उत्तर प्रदेश में प्राथमिक शिक्षा

सरोकार और सवाल

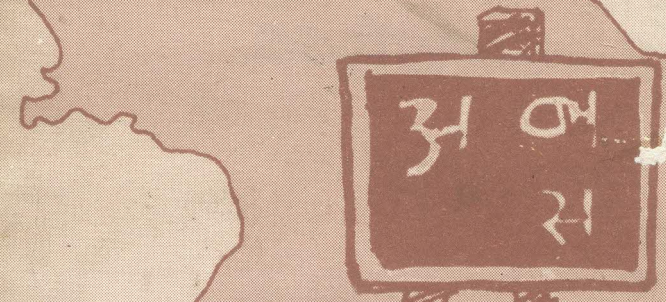

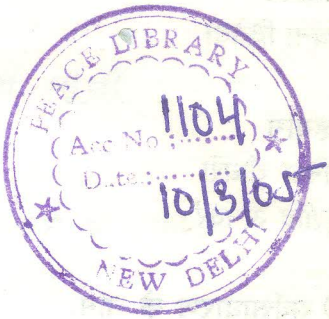

PEACE LIBRARY
Acc No 1104
Date 10/3/05
NEW DELHI

उत्तर प्रदेश में प्राथमिक शिक्षा

सरोकार और सवाल

लेखिका
अर्चना द्विवेदी

सहयोग
अनिल चौधरी
खुर्शीद अनवर

© सर्वसाधारण के नाम,
अगस्त 2000

आभार
अध्ययन क्षेत्र के समस्त ग्रामीण, छात्र, अध्यापक एवं सरकारी कर्मचारी, विकल्प सहारनपुर, जन शिक्षण केन्द्र, अम्बेडकर नगर, पीस के सभी साथी

प्रकाशक
पीस
एफ–93, कटवारिया सराय
नई दिल्ली – 110016

टाइपसेटिंग एवं प्रूफ सहयोग
अहिवरन सिंह
आर.के. बिष्ट

रूपांकन एवं मुद्रण
अमन ग्राफिक्स, नई दिल्ली
फोनः 6420204

विषय सूची

1. प्रस्तावना
2. प्राथमिक शिक्षा परियोजनाओं का यर्थाथ
3. प्राथमिक शिक्षा परियोजनाएं
4. सहारनपुर – बेसिक शिक्षा कार्यक्रम
5. अम्बेडकर नगर – जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम
6. सारांश
7. हम क्या कर सकते हैं

प्रस्तावना

शिक्षा जगत के मौजूदा सूरत–ए–हाल को शक्ल देने में सन् 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति का बहुत बड़ा हाथ है। इस दस्तावेज में तमाम चीज़ों के अलावा बुनियादी शिक्षा के सार्वभौमीकरण पर खासा ज़ोर दिया गया और इस बावत सरकार की प्रतिबद्धता निश्चित करने की बात कही गई थी। इसी बिना पर आगे की शिक्षा परियोजानाओं को भारत सरकार की मंजूरी दी गयी। यहॉ तक कि बुनियादी शिक्षा के सार्वभौमीकरण को शिद्दत से अन्ज़ाम देने के नाम पर ही इस बावत विश्व बैंक से कर्ज लेने को सही ठहराया गया। आज तमाम राज्यों में चल रही बुनियादी या प्राथमिक शिक्षा की परियोजनाऐं विश्व बैंक के कर्ज द्वारा ही 'पोषित' हैं। इन्ही में से एक प्रमुख प्रयास है – "उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा परियोजना" और "जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम", जिन्हें यू.पी.बी.ई.पी. एवं डी.पी. ई.पी. के नाम से जाना जाता है ।

अब तक भारत सरकार द्वारा बुनियादी और प्राथमिक शिक्षा के लिए लिया गया कर्जा – एक हजार दो सौ चार मिलियन यू एस डालर (US$1,204,00,00,000) अर्थात इकसठ हजार एक सौ बीस मिलियन रुपये (रुपये 61,120,00,00,000) तक पहुॅच चुका है। लेकिन शिक्षा जगत में बेहतरी का अहसास फिर भी नदारद ही है।

इतना बड़ा कर्ज लेकर चल रही परियोजनाओं से आम लोगों को क्या मिल रहा है। स्कूलों का नज़ारा वही– ढाक के तीन पात– न छात्रों के बैठने के लिए पर्याप्त कमरे, न टाट पट्टी, और न ही ब्लैक बोर्ड; विद्यालय का न कोई प्रांगड़ (अहाता) है और न ही वहां छात्रों के लिए अन्य कोई सुविधा। अगर इन सबके बिना काम चला भी लें तो शिक्षक के बिना कैसे चलाएं। बिना बांस के बांसुरी बजाना भी शायद सम्भव हो जाय लेकिन बिना शिक्षक के पढ़ाई की उम्मीद तो नादानी ही कहलाएगी। विश्व बैंक कर्ज पोषित परियोजनाओं के दो से ज्यादा चरण पूरे होने के बावजूद उत्तर प्रदेश में लगभग 30 प्रतिशत विद्यालय शिक्षकों के बिना ही शिक्षा कर्म में लिप्त हैं।

अरबों रुपयों का कर्जा प्राथमिक विद्यालयों में पांच कक्षाओं के लिए पांच अध्यापक देने में असमर्थ है। ऐसे हालात में गुणवत्तापरक शिक्षा तो बहुत दूर की बात दिखाई देती, फिर भी सरकार और विश्व बैंक कार्यक्रमों की सफलता के ढोल पीट रहें हैं। सिर्फ रजिस्टरों में चढे 102 प्रतिशत नामांकन दिखा कर उसे ही प्राथमिक शिक्षा की उपलब्धि मान कर कर्ज को न्याय संगत ठहराया जा रहा है।

ऐसे में यह सवाल उठना लाजमी हो जाता है। आखिर सरकार ऐसा क्यों सोचती है कि बिना पर्याप्त शिक्षकों के भी गुणवत्तापरक शिक्षा दी जा सकती है? विद्यालय भवन का नक्शा बनाने वालों ने यह कैसे सोच लिया कि पॉच कक्षाओं के लिये दो कमरों से ही काम चल सकता है। सभी कक्षाओं के छात्र उनमें बैठ भी सकते हैं और पढ़ भी सकते है।

भारत में प्राथमिक शिक्षा की बदहाली के लिए सरकार अक्सर अभिभावकों तथा शिक्षा के प्रति उनकी अरुचि को दोषी ठहरा कर काम चलाती आयी है। लेकिन विद्यालयों में छात्रों की बढ़ती सख्या (खासकर पहली कक्षा में) यह साबित कर चुकी है कि अभिभावक अपने बच्चों को पढ़ाना चाहते हैं। इससे इतना तो साफ है कि सरकारों की पुरानी दलील नाकाफी है और दिक्कत कहीं और ही है। सालों से चल रही परियोजनाओं में पैसा पानी की तरह बहाने के बाद भी "सबके लिए शिक्षा" का सपना हकीकत में नहीं बदलता नज़र आता तो उसकी चिन्ता किसे करनी होगी? विश्व बैंक या सरकरी अफसरों से इसकी उम्मीद रखना तो बेवकूफी ही कहलायेगी। बैंक की चिन्ता कर्ज बांटने और उसकी उगाही तक सीमित है तो अफसरों की चिन्ता अनके गद्दीनशीं रहने तक। कुल मिला कर चिन्ता उन्हें ही करनी पड़ेगी जिनकी सन्तानों को आज से पन्द्रह साल बाद कर्ज अदायगी के लिये खटना पड़ेगा।

इन्ही कुछ सवालों और चिन्ताओं को लेकर उत्तर प्रदेश में प्राथमिक शिक्षा हेतु चल रही यू.पी.बी.ई.पी. सहारनपुर और डी.पी.ई.पी. योजना अम्बेडकर नगर का अध्ययन किया गया। प्रस्तुत पुस्तिका उन्हीं अध्ययनों के आधार पर उत्तर प्रदेश में प्राथमिक शिक्षा की खस्ता हालत की एक झलक पेश करने का प्रयास है।

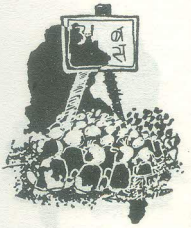

प्राथमिक शिक्षा परियोजनाओं का यथार्थ

भूमिका

शिक्षा, सार्वभौमिक शिक्षा, सभी के लिए शिक्षा, सर्वव्यापी शिक्षा, शिक्षा का लोकव्यापीकरण, गुणवत्ता परक शिक्षा, न्यूनतम अधिगम आधारित शिक्षा .....। परेशान न हों; यह सब प्राथमिक शिक्षा की ही अलग–अलग पैकेजिंग के नाम हैं। आजकल शिक्षा हर रंग, साइज और आकारों में उपलब्ध है और वो भी बिल्कुल न्यूनतम ब्याज दरों पर । सरकार किसी की भी रही हो, हर दौर में भारत सरकार को शिक्षा और मुख्यतः प्राथमिक शिक्षा के प्रति चिंता अवश्य रही है। आखिरकार भारत सरकार की चिन्ता ने विश्व बैंक के दरवाजे खटखटाये और विश्व बैंक ने इस चिन्ता को जाना कम समझा ज्यादा। समझ में आते ही प्राथमिक शिक्षा की धरती पर विश्व बैंक के न्यूनतम ब्याज दरों वाले डालर्स की झड़ी लग गई (जिसे सभी सरकारी विभाग बड़ी चतुराई से अनुदान कहते और लिखते हैं)। और फिर इससे पुष्पित एवं फलित फसल को काटने का जिम्मा ठेकेदारों, सलाहकारों (consultants), सरकारी कर्मचारियों तथा अन्य संबन्धित अधिकारियों ने अपने ऊपर ले लिया। अब जबकि प्राथमिक शिक्षा को सभी के लिए बनाने के प्रयास काफी हद तक सफल माने जाने के दावे किए जा रहे हैं और यह कार्य सफलता की सीढ़ियां चढता ही चला जा रहा है, साथ ही कर्जे की अनवरत बरसात में प्राथमिक शिक्षा की फसल दिन दूनी रात चौगुनी फल–फूल रही है, आश्चर्य न होगा यदि कल कोई दावा ठोंक दे कि बच्चों की कुल संख्या से भी अधिक शिक्षित बच्चे केवल हमारे देश में हैं।

आजकल प्राथमिक शिक्षा धड़ल्ले से बिक रही है। यही वह अचूक ब्रह्मास्त्र है जिससे देश की सभी समस्याएं खुद–ब–खुद सुलझ जाएंगी। ऐसे जादुई शस्त्र के लिए जो भी किया जाय कम ही है। भारत सरकार यह बात अच्छी तरह समझ गई है और इस अचूक

वाण को पाने के लिए हर कीमत अदा करने को तैयार है। गरीब देशों के मसीहा विश्व बैंक ने भारत की मजबूरी को समझ कर सॉफ्ट लोन देने की मेहरबानी की और अब सिर्फ उत्तर प्रदेश में ही प्राथमिक शिक्षा के नाम पर विश्व बैंक की दो बड़ी परियोजनाएं उ.प्र. बेसिक शिक्षा परियोजना और जिला प्राथमिक शिक्षा परियोजना के नाम से चल रही है। उत्तर प्रदेश के अलावा यह कार्यक्रम 12

अन्य राज्यों में भी इसी गति से चल रहा है। अभी तक सिर्फ उत्तर प्रदेश में ही लगभग एक अरब उन्तीस करोड़ इकसठ लाख पचास हजार रूपये (1,29,61,50,000) का कर्ज लिया जा चुका है और दूसरे चक्र के ऋण की पूरी तैयारी है।

इन्हीं कुछ कारणों से पिछले कई सालों से 'शिक्षा' बुद्धिजीवियों और सरकारी महकमों का मन पंसद विषय बनी हुई है। 1986 में शिक्षा पर हुई आम बहस और फिर इसके लोकव्यापीकरण के लिए किए गये प्रयास कई पायदान लांघ चुके हैं और करोड़ों रूपये का कर्ज पी चुके हैं। फिर भी "सभी के लिए शिक्षा" एक अनछुई अनुभूति बनी हुई है। इसी में यदि शिक्षा की गुणवत्ता भी शामिल कर दी जाये तो हालात और भी बदत्तर नजर आते हैं। "सभी के लिए शिक्षा" और "शिक्षा की गुणवत्ता" (जिसमें उपयोगिता का स्थान कहीं नजर नहीं आता है), पिछले एक दशक में दोनों को ही

परियोजनाओं में बढ़ा–चढ़ा कर पेश किया जाता रहा है। इन सबके बीच में जिस बात पर सबसे अधिक सवाल उठने चाहिए, उस पर सभी चुप्पी साधे हुए हैं। शिक्षा की सार्थकता और उपयोगिता के जाल में उलझी परियोजना सिर्फ नामांकन के लक्ष्यों और भवन निर्माण तक ही सीमित होकर रह गई है लेकिन इसके तहत होने वाली गतिविधियों और उनकी उपयोगिता के लिए कोई वचनबद्धता नजर नहीं आती। शिक्षा और उसमें सुधार सभी सरकारों के वायदों का ऐसा अभिन्न अंग है कि स्वतंत्रता के पुर्व शुरू हुए आंदोलन से लेकर विश्व बैंक की योजनाओं तक सभी इसकी चर्चा करते रहे हैं परन्तु धरातल पर कुछ भी ठोस रूप में नज़र नहीं आता। सरकार विश्व बैंक की सहायता से इस राक्षस रूपी शिक्षा तंत्र (जो कि चीन के बाद विश्व का दूसरा सबसे बड़ा शिक्षा तंत्र है) का पेट भरने में लगी है, परन्तु यह भूख अभी कम से कम आने वाले कुछ और सालों में शान्त होती दिखाई नहीं देती।

प्राथमिक शिक्षा के नाम पर हो रहे तमाम प्रयासों का असली स्वरूप पिछड़े क्षेत्रों में ही देखने को मिलता है, जहां उन्नति के बजाय अवनति के दृश्य अधिक हैं। एक ओर जहां ये परियोजनाएं बड़े–बड़े दावे कर रही हैं वहीं दूसरी ओर सच्चाई के दावों से कोसों दूर आज भी प्राथमिक शिक्षा के जीर्ण–शीर्ण हालात की गवाही दे रही हैं। सभी परियोजनाएं शिक्षा को सर्वसुलभ बनाने, उसकी गुणवत्ता बढ़ाने तथा बाह्य ढांचे को सुदृढ़ करने की बात करती हैं और इन उद्देश्यों को अंजाम देने के लिए न जाने कितने कार्यालय, कर्मचारी, सलाहकार, अधिकारी, प्रशिक्षक, प्रशिक्षण स्थल और कंप्यूटर लगे हुए हैं फिर भी नतीजा वही "ढाक के तीन पात"। आज भी विद्यालयों में बैठने का न तो समुचित स्थान और न ही पर्याप्त शिक्षक। न किताबों में ऐसा ज्ञान जो रोचक हो और न ही ऐसा रुचिकर वातावरण कि बच्चा विद्यालय शौक से आये, मजबूरी में नहीं। शिक्षकों को प्रशिक्षण दे देकर प्रशिक्षण का चलता फिरता सैम्पल बना दिया गया है, जहां पर एक महीने के 18 दिन वे प्रशिक्षण अथवा बैठकों में ही रहते हैं, विद्यालय में पढ़ाने के लिए न उनके पास वक्त है, न रूचि।

सभी परियोजनाएं वह सभी कार्य करती हैं जिनसे प्राथमिक शिक्षा को पूर्णतः अंपग बनाने की दिशा में बढा जा सके, साथ ही एक कर्ज़ के बाद दूसरे कर्ज़ की पूरी–पूरी संभावना बनी रहे । अर्थात् कोई भी कार्य पूरा न किया जाये, वरना उसके बाद करने के लिए क्या रह जाएगा। उदाहरण के लिए कुल परियोजना राशि का सबसे प्रमुख अंश विद्यालय भवन बनाने और अतिरिक्त कमरे/शौचालय इत्यादि बनाने के लिए है लेकिन इस राशि से जो विद्यालय बन रहे हैं अथवा बने हुए विद्यालयों में जो अतिरिक्त कमरे बनाये जा रहे हैं, वे भी अपर्याप्त हैं क्योंकि प्राथमिक विद्यालय के लिए सिर्फ दो कमरे और एक बरामदा बनता है जबकि वहां पर पांच कक्षाएं चलती हैं। अर्थात या तो अधिकारी यह मान कर चल रहे हैं कि एक कमरे में दो कक्षाएं चलेंगी (और पढ़ाई भी होगी) या फिर सिर्फ दो ही कक्षाएं चलेंगी या फिर हमसे क्या लेना देना, शिक्षक और विद्यार्थी आपस में समझ लेंगे। उनका काम था बजट बनाकर एक नक्शा तैयार करवाना, वह कितना उचित और उपयोगी है यह शायद उनके अधिकार क्षेत्र में नही आता होगा।

सवाल यह है कि जब प्राथमिक विद्यालय में पांच कक्षाएं चलती हैं तो पांच कमरे क्यों नहीं बनाए जाते। इतनी बड़ी परियोजना राशि (जो कि राज्य और जिला कार्यालयों से खर्च भी नहीं हो पाती है उसका बड़ा हिस्सा बैंकों में यूं ही पड़ा रहता है) में दो कमरों के लिए ही प्रावधान क्यों हैं, पांच कमरों के लिए क्यों नही। जो पैसा फिजूल के कार्य जैसे कि बी.आर.सी. और एन.पी.आर.सी. इत्यादि की बिल्डिंग बनाने में ठेकेदारों के पास चला जाता है, उसे विद्यालय भवन में कमरे बनाने के लिए इस्तेमाल क्यों नहीं किया जाता ? जो पैसा परियोजना को चलाने के लिए एयरकडिंशंड कार्यालयों, अधिकारियों उनके एयरट्रवेल और पूरे कंप्यूटरीकरण पर खर्च होता है उससे विद्यालय में कमरे क्यों नहीं बनाए जाते जो कि पचासों साल तक काम आएंगे और गांव में स्थायी संपत्ति का भी निर्माण होगा। बच्चों को धूप, गर्मी, बरसात और ठण्ड से राहत मिलेगी तो पढ़ने की कोशिश भी करेगें।

उत्तर प्रदेश की एक कहावत है "सूत न कपास, कोरी से लट्ठम–लट्ठा"। अर्थात मूल वस्तु के अभाव में उसके आस–पास की चीजों पर मेहनत करते जाने से कोई फायदा नहीं हो सकता। उत्तर प्रदेश के यू.पी.बी.ई.पी. और डी.पी.ई.पी. कार्यक्रमों में यह कहावत शत प्रतिशत चरितार्थ होती दिखाई देती है; जहां पर मूल आवश्यकताओं के अलावा हर आवश्कता का ध्यान रखा गया है।

उदाहरण के लिए प्रर्याप्त शिक्षक चाहे हों या न हों शिक्षकों के प्रशिक्षण की व्यापक व्यवस्था है। एक अध्यापक को एक साथ चार कक्षाएं सभांलने का प्रशिक्षण भी दिया जा रहा है, चाहे फिर प्रशिक्षणों और बैठकों के चलते अध्यापक को एक कक्षा संभालने का भी वक्त न मिल पाता हो। सिर्फ इतना ही नहीं इन परियोजनाओं के आ जाने के बाद से स्थिति यह है कि आज से पांच साल पहले जिन विद्यालयों में 3–4 शिक्षक हुआ करते थे अब वहां सिर्फ एक अध्यापक है और शिक्षा का स्तर पहले से कई दर्जा नीचे गिर गया है।

इसी तरह अपर्याप्त शिक्षकों के साथ शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए करोड़ों रूपये खर्च किए जा रहे हैं लेकिन पर्याप्त शिक्षकों की व्यवस्था नहीं की जा रही जिससे कि शिक्षा का स्तर खुद–ब–खुद सुधरेगा। डी. पी ई. पी. वार्षिक रिर्पोट के अनुसार कुल 94,998 स्कूलों में सिर्फ 3,10,302 अध्यापक हैं जबकि यदि एक विद्यालय में कम से कम 5 अध्यापकों का भी औसत मान कर चलें तो आज भी प्राथमिक विद्यालयों में 1,64,688 अध्यापकों की कमी है। वहीं दूसरी तरफ उत्तर प्रदेश में बी.एड. किए हुए हजारों युवक युवतियां बेरोजगार घूम रहे हैं। 1997–98 में जब शिक्षकों की नियुक्ति हुई तो उनके साथ एक अजीब सा खेल खेला गया। सभी बी.एड. युवक युवतियों को प्राथमिक विद्यालय का अध्यापक बनने के लिए बी.टी.सी. (Basic Teacher's Course) भी करना पड़ा और उससे फिर करोड़ों का खर्चा। और जब यह सब प्रशिक्षित हो जाएं तब भर्ती होने के बाद सेवा पूर्वागम प्रशिक्षण (यह बात और है कि कुछ अध्यापकों को चार साल के बाद सेवा पूर्वागम प्रशिक्षण दिया जाता

है) अर्थात प्रशिक्षण के बाद प्रशिक्षण, फिर प्रशिक्षण और फिर प्रशिक्षण।

सभी परियोजनाएं सहभागिता और माइक्रो प्लानिंग का डंका पीटती हैं जिससे कि आवश्यकता आधारित कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार की जाती है लेकिन यह आवश्यकताएं कौन निर्धारित करता है इसके बारे में कुछ भी निश्चित तौर पर नहीं कहा जा सकता। क्योंकि यदि सचमुच क्षेत्रीय आवश्यकताओं का ध्यान रखा गया था तो विद्यालय परिसर का जिक्र क्यों नहीं आया, जबकि लगभग सभी अध्यापक समवेत स्वर में विद्यालय परिसर की मांग को रखते हैं जिसके अभाव में विद्यालय भवन एक उजड़े हुए मकान से अधिक कुछ नहीं लगता। विद्यालय परिसर उस स्थिति में और भी महत्वपूर्ण हो जाता है जबकि कक्षा के लिए कमरे पर्याप्त नहीं हों। फलस्वरुप विद्यार्थी बाहर ही बैठते हैं और ऐसे में यदि चहारदिवारी न हो तो अध्यापक के लिए कक्षा और विद्यार्थियों को संभालना और उनका ध्यान केन्द्रित रखना लगभग एक अंसभव कार्य हो जाता है। लेकिन परियोजना प्लानिंग का इन सब जमीनी समस्याओं से कोई लेना देना नहीं है।

विश्व बैंक और उसके द्वारा दिये गए ऋण ने शिक्षा को एक बिकाऊ वस्तु बना दिया है और भारत सरकार विकास के नाम पर इसे मनमाने ढंग से कैश करा रही है। त्रासदी यह है कि जिसे आज हम सहायता कह रहे हैं वही कल सबसे बड़ी विपत्ति बनकर सामने आने वाली है और फिर शायद उसका कोई हल भी नहीं होगा। लेकिन हमने बिल्ली की तरह आंखें बन्द कर दूध पीने की कला में महारत हासिल की हुई है, जो कुछ स्पष्ट दिखाई दे रहा है वह भी नहीं देखना चाहते हैं।

प्राथमिक शिक्षा और उसके विस्तार के लिए चल रहे कार्यक्रम भी कुछ ऐसी ही तस्वीर सामने रख रहे हैं। अभी जिस अंधाधुंधी से युद्धस्तर पर परियोजनाएं चलाई जा रही है, वह किसी से छुपा नहीं। इन परियोजनाओं से कितना फायदा हो रहा है और यदि ये नहीं होतीं तो कितना नुकसान होता इसका विश्लेषण करने में

किसी भी राज्य अथवा केन्द्र सरकार की रूचि नहीं। जबकि परियोजना और गैर–परियोजना क्षेत्रों में विकास की दर का अंदाजा परियोजना की ही वार्षिक रिर्पोट में दिए आकड़ों से लगाया जा सकता है। परियोजना के तहत बालिका शिक्षा पर विशेष जोर दिया जाता है, जिसके अर्न्तगत पिछले सालों में लड़कियों का नामांकन 31 प्रतिशत हो गया है जबकि गैर–परियोजना क्षेत्रों में 22 प्रतिशत है अर्थात 9 प्रतिशत का अन्तर। विचारणीय यह है कि क्या करोड़ों का खर्चा करके सिर्फ 9 प्रतिशत का इजाफा उचित है। इन आंकड़ों में भी कितना सच है और कितना झूठ; यह सिर्फ उस क्षेत्र के लोग जानते हैं या फिर शिक्षक और अधिकारी गण। क्या यह संभव नहीं कि गैर–परियोजना क्षेत्रों में ही यदि थोड़ी सी इच्छा शक्ति से कार्य किया जाये तो बिना करोड़ों रूपये के कर्जे के ही वे लक्ष्य पाए जा सकते हैं जिनके लिए इन मौजूदा करोड़ों के बाद भी यथास्थिति में कोई खास बदलाव नहीं आया है।

परियोजना अपनी सफलता का डंका पीटते हुए हर साल बढ़ते हुए नांमाकन के आंकड़े पेश करती जा रही है और बढ़े हुए आंकड़े विद्यालय के रजिस्टरों में भी बाकायदा मौजूद हैं जबकि विद्यालयों में उतने बच्चे नहीं जितने रजिस्टर में मौजूद हैं, जितने बच्चे विद्यालय में हैं उनके बैठने के लिए पर्याप्त कमरे नहीं । जितने कमरे हैं उतने भी शिक्षक नहीं। और जो शिक्षक हैं उनके पास विद्यालय को देने के लिए समय नहीं। यही कारण है कि यह ऋण लिप्त शिक्षा और इसका स्वरुप हमारी चिन्ता का विषय होना चाहिए जिन पर गंभीरता से विचार किया जाना चाहिए ।

प्राथमिक शिक्षा परियोजनाएं

शिक्षा परियोजनाओं के तहत जमीनी सच्चाईयों को समझने के लिए आवश्यक है कि इन परियोजनाओं के स्वरूप और उनके उद्देश्यों को समझा जाय जिससे कि अध्ययन को तुलनात्मक दृष्टि से विश्लेषित किया जा सके।

उद्देश्य

यू.पी.बी.ई.पी. के उद्देश्य–राज्य, जिला, ब्लाक एवं गांव के स्तर पर योजना तैयार करने, प्रबन्धन और सहयोगी संगठन खड़ा करने के लिए :

संस्थागत क्षमता संवर्द्धन

बेसिक शिक्षा विकास कार्यक्रम की योजना तैयार करने, उनके प्रबंधन और मूल्यांकन की दृष्टि से राज्य, जिला, ब्लाक एवं ग्राम स्तर पर योजना प्रबंधन और सहयोगी संगठन के ढांचे को मजबूत करना।

गुणवत्ता बढ़ाना और कार्य संवर्द्धन

सामुदायिक सहभागिता, समय से शिक्षा की शुरूआत, पाठ्यक्रम और पाठ्य पुस्तकों में संशोधन, सेवा काल प्रशिक्षण, महिलाओं एवं लड़कियों के लिए विशेष कार्यक्रम, स्कूल प्रबंधन में मजबूती तथा परियोजनाओं एवं नए तरीकों को प्रोत्साहन देकर शिक्षा में गुणवत्ता लाना एवं कार्य संपादन की ओर बढ़ना।

शिक्षा में पहुंच को बेहतर बनाना

अभी तक लाभ न पा सकने वाले समुदायों में अतिरिक्त प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक विद्यालय बना कर तथा स्कूलों से बाहर हो गए बच्चों के लिए अनौपचारिक कक्षाओं के पुनर्गठित कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में सहयोग देकर परियोजनागत जिलों में बेसिक शिक्षा में पहुंच को बेहतर बनाना।

डी. पी. ई. पी. के उद्देश्य

डी.पी.ई.पी. का उद्देश्य परियोजना जिलों में पुनरावृत्ति योग्य स्थायी व प्रभावी कार्यक्रमों को विकसित कर लागू करवाना है। जिससे कि ..

1 जेन्डर और समुदायों में नामांकन और शिक्षा उपलब्धियों के अन्तर को 5 प्रतिशत से भी नीचे ले आना।

2 प्राथमिक शिक्षा के सभी छात्रों का ड्रापआउट रेट 10 प्रतिशत से भी कम करना।

3 औसत उपलब्धि स्तर को कम से कम 25 प्रतिशत से भी ऊपर ले जाना।

4 बुनियादी साक्षरता और गिनती में दक्षता के प्रति उपलब्धि हासिल करके बेसलाइन अनुमान के संदर्भ में कम से कम 25 प्रतिशत की औसत उपलब्धि हासिल करना। इसके अतिरिक्त प्राथमिक विद्यालयों के सभी बच्चों द्वारा अन्य दक्षताओं के प्रति कम से कम 4 प्रतिशत उपलब्धि हासिल करना।

5 वैकल्पिक शिक्षण केन्द्रों के प्रावधान के जरिये सभी बच्चों को प्राथमिक शिक्षा अथवा इसके बराबर की अनौपचरिक शिक्षा दिलवाना।

6 प्राथमिक शिक्षा की योजना तैयार करने, प्रबंधन एवं मूल्यांकन की दृष्टि से राष्ट्रीय राज्य एवं जिला स्तर के संस्थानों एवं संगठनों की क्षमता संवर्द्धन करना।

सन् 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति और 1992 के प्रोग्राम ऑफ एक्शन के तहत सरकार की "सभी के लिए शिक्षा" की वचनबद्धता निभाने के लिए उत्तर प्रदेश में 1993–94 में विश्व बैंक की ऋण पोषित परियोजना को लागू किया गया। जिसका पहला चरण 1993–94 से 1997–98 की अवधि तक रहा और दूसरा चरण 1997–98 से 1999–2000 तक रहेगा। तीसरा चरण 2000 से आगे

के लिए तैयार है। इसके अर्न्तगत वर्तमान में दो मुख्य परियोजनाएं चल रही हैं – एक, विश्व बैंक की उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा कार्यक्रम और दूसरी, जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम। इन परियोजनाओं को लागू करने के लिए राज्य स्तर पर एक उत्तर प्रदेश में सभी के लिए शिक्षा परियोजना बोर्ड का गठन किया गया और अब उसकी निगरानी में लखनऊ स्थित परियोजना कार्यालय के संरक्षण में इसके क्रियाकलापों को सर अंजाम दिया जा रहा है। दोनों परियोजनाओं को लागू करने के लिए जिला स्तर पर लगभग एक–सा ढांचा है कुछ बारीक अन्तरों के अलावा जो विस्तृत ढांचा इन परियोजनाओं को लागू कर रहा है वह इस प्रकार है :–

परियोजना का प्रशासनिक ढांचा

राज्य परियोजना कार्यालय

उ. प्र. बेसिक शिक्षा परियोजना जिला प्राथमिक शिक्षा परियोजना

↓

प्रदेश स्तर

राज्य परियोजना निदेशक

↓

अपर परियोजना निदेशक

↓

जिला स्तर

विशेषज्ञ शिक्षा अधिकारी

↓

जिला शिक्षा समिति

अध्यक्ष – जिला परिषद चेयरमैन

↓

सदस्य – प्रशिक्षण प्राचार्य

सभी विधायक

सांसद

डी.डी.ओ.

जिला परियोजना समिति

अध्यक्ष – जिलाधिकारी

↓

सदस्य – समस्त ए.बी.एस.ए.
विधायक
तकनीकी विभाग
समाजसेवी

जिला स्तर पर सबसे उच्च अधिकारी विशेषज्ञ बेसिक शिक्षा अधिकारी (बी.एस.ए.) होते हैं और उनके नीचे सभी खण्डों के लिए एक–एक सहायक बेसिक शिक्षा अधिकारी (ए. बी. एस. ए.) का प्रावधान है। बी.एस.ए. का दफ्तर जिले में होता है जहां पर सहायक बेसिक शिक्षा अधिकारी भी बैठते हैं।

परियोजना का जिला स्तर पर क्रियान्वयन ढांचा

विशेषज्ञ बेसिक शिक्षा अधिकारी कार्यालय

↓

जिला प्रशिक्षण संस्थान (डाइट)

↓

खण्ड संसाधन केन्द्र (बी.आर.सी.)

↓

न्याय पंचायत संसाधन केन्द्र (एन.पी.आर.सी.)

↓

पूर्व माध्यमिक शिक्षा विद्यालय

↓

प्राथमिक शिक्षा विद्यालय

शिक्षक प्रशिक्षण

- जिला स्तर : जिला प्रशिक्षण संस्थान (डाइट)
- ब्लाक स्तर : ब्लाक संसाधन केन्द्र (बी.आर.सी.)
- गांव स्तर : न्याय पंचायत संसाधन केन्द्र (एन.पी.आर.सी.)

जिला शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान (डाइट)

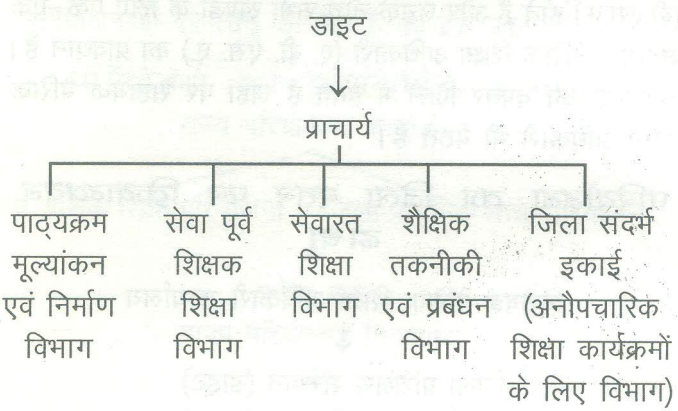

परियोजना क्रियान्वयन

विशेषज्ञ बेसिक शिक्षा अधिकारी के अनुसार हर साल कार्यक्रम की शुरूआत माइक्रो सर्वे के साथ होती है जिसके तहत विद्यालय से संबंधित भिन्न–भिन्न जानकारी ली जाती है। जैसे कि – कहां पर विद्यालय नहीं हैं, कितनी दूरी पर विद्यालयों की मौजूदगी है, वर्तमान विद्यालयों में शिक्षा सामग्री है अथवा नहीं, और 6–14 साल तक के बच्चों की सख्यां, जिनका स्कूल में नामांकन नहीं हुआ है? इस प्रकार आंकड़े इकट्ठा करके उसके अनुसार भवन निर्माण और उनकी संख्या का निर्धारण होता है। तत्पश्चात योजना बनाकर इसे जिला परियोजना समिति में रखा जाता है और फिर यहां पर सहमति बन जाने पर स्वीकृति के लिए शिक्षा समिति को भेज दी जाती है। शिक्षा समिति से स्वीकृति मिलने पर योजना दूसरे वित्त मदों के साथ राज्य परियोजना कार्यालय में वित्त स्वीकृति के लिए भेज दी जाती है। राज्य परियोजना कार्यालय अपने बजट के अनुसार उसे स्वीकृत कर वापस जिला कार्यालय भेज देता है। जबकि प्रशिक्षण का बजट डाइट द्वारा दिया जाता है और अध्यापकों के मानदेय इत्यादि पर पद सृजन के अनुसार निर्णय होता है।

बजट के अनुसार सभी चुने गये गांवों में भवन निर्माण के लिए सरपंच और बहुउद्देश्यीय कर्मचारी (पंचायत सचिव भी, जो कि सरकारी वेतन पर होता है) के सम्मिलित हस्ताक्षर में भवन निर्माण राशि पंचायत निधि को दे दी जाती है। इसके बाद यह ए.बी.एस.ए. और एन.पी.आर.सी. की जिम्मेदारी होती है कि वह यह सुनिश्चित करें कि भवन निर्माण का काम सुचारू रूप से चलता रहे। शिक्षा सामग्री इत्यादि के लिए रकम (मात्र 500 रूपये प्रति विद्यालय प्रति साल) स्कूल में भेज दी जाती है। शिक्षकों का वेतन इलाहाबाद से नियत्रिंत होता है जिसे अध्यापक बैंकों के माध्यम से स्वयं संचालित करते हैं।

अध्ययन के दौरान अधिकारियों ने बताया कि उत्तर प्रदेश विधान सभा ने यह बिल पारित किया है कि पंचायत की भूमिका को परियोजना क्रियान्वयन में कम किया जायेगा और अब प्रधानाचार्य पर ही अधिक जिम्मेदारी होगी। जो अधिकार पहले पंचायत को मिले थे, उनके अनुसार, भवन निर्माण का सारा पैसा सरपंच के संरक्षण में पंचायत निधि खाते में जमा होता था। सरपंच अपने गांव के विद्यालय की आवश्यकता के अनुसार एक शिक्षक नियुक्त कर सकता था और कार्यालय उसका मानदेय देने के लिए वचनबद्ध था। किन्तु अब ये दोनों ही अधिकार पंचायत से ले लिए गये हैं और भवन निर्माण की राशि अब एक नये एकाउण्ट में हेडमास्टर और सरपंच के सयुंक्त हस्ताक्षर से डाली और निकाली जाएगी। अध्यापक की नियुक्ति राज्य और जिला स्तर पर ही होगी। जब इस बिल को उठाने का मुख्य कारण पूछा गया तो पता चला कि सरपंचों का अनपढ़ या ज्यादा पढ़ा लिखा न होना ही इसकी वजह है। इसकी वजह से अध्यापकों को काफी मुश्किलों का सामना करना पड़ता है।

पूर्व परियोजना के तहत शिशु शिक्षा केन्द्र (4–6 साल के बच्चों के लिए) और शिशु शिक्षा घर (6–11 साल तक के बच्चों के लिए) भी चलाये जाते थे जिनमें दो महिला कार्यकर्ता रखी जाती थी, एक 'कार्यकर्तनी' और दूसरी 'सहायक कार्यकर्तनी'। इनका मानदेय क्रमशः 175 रूपये और 75 रूपये मासिक होता था। लेकिन अब वह परियोजना, बन्द कर दी गई है और जो गैर सरकारी संस्थाएं (स्वयं सेवी संस्थाएं) इन्हें चलाती थीं, उनका अनुदान भी रोक दिया गया है। अधिकारी के अनुसार इन कार्यक्रमों को बन्द करने का कारण यह है कि बी.ई.पी. चाहता है कि सभी बच्चे मुख्य धारा से जुड़ें और इस तरह के केन्द्रों की आवश्यकता ही न रहे।

परियोजना के तहत स्कूलों में हरिजन, पिछड़ी हुई जातियों तथा अल्पसंख्यकों के बच्चों को छात्रवृत्ति भी मिलती है, जो कि 300 रूपये सलाना है। पोष्टाहार के रूप में मासिक 3 किलों गेहूं सभी बच्चों को मिलता है। स्कूलों में सौंदर्यीकरण के लिए 2000 रूपये सालाना अलग से दिए जाते हैं।

वित्त एवं व्यवस्था

सहारनपुर शिक्षा परियोजना के वित्त एवं लेखा अधिकारी के अनुसार यहां के वित्त नियंत्रक का कार्यालय इलाहाबाद में है और बजट लखनऊ से पारित होता है जबकि मांग पत्र सहारनपुर से जाता है। राज्य परियोजना कार्यालय अपने बजट के अनुसार मांग पत्र को पारित कर भेज देता है। इसी प्रकार शिक्षकों की नियुक्ति में भी ऐसी ही प्रक्रिया अपनाई जाती है। वित्त व्यवस्था और बंटवारे को समझने के लिए गत वित्त वर्ष के आकड़ों पर ध्यान दें।

मद	राशि	प्रतिशत
कुल जिला परियोजना राशि	1,98,55,000	86.35
पुराने अवशेष	31,37,303	13.65
कुल राशि	2,29,92,303	100
भवन निर्माण एवं बाह्य ढांचे पर खर्चा	79,19,558	34.44
वेतन और मानदेय	59,40,783	25.83
शिक्षा सामग्री	9,00,591	3.91
प्रशासनिक खर्च	6,02,358	2.61
प्रशिक्षण केन्द्र को स्वीकृत राशि	48,50,000	21.09
प्रशिक्षण पर खर्च हुई राशि	27,77,750	

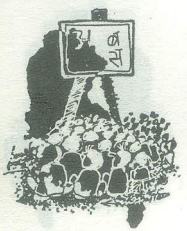

विषय वस्तु

शिक्षकों के "सेवा पूर्वागम प्रशिक्षण मंजूषा" उत्तर प्रदेश के अनुसार "शिक्षा का स्तर नीचा होने का और शिक्षा के सार्वजनीकरण में आने वाले अवरोध में मुख्य बिन्दु है; शिक्षा की उद्देश्यहीनता और पाठ्यक्रम तथा पाठ्यवस्तु का बोझिल एवं अधिगम क्रिया का नीरस होना"। इसके तहत यह स्पष्ट किया गया है कि "वास्तविक जीवन से संबंधित न होने के कारण आज शिक्षा अपनी सार्थकता खो बैठी है"।

सहारनपुर दौरे के अनुभवों और पाठ्यक्रम सामग्री का अध्ययन करने के बाद हमारे सामने यह प्रश्न और भी गहरा हो गया कि वर्तमान शिक्षा परियोजना उपरोक्त दो मुख्य विषय वस्तु से संबंधित समस्याओं का समाधान किस प्रकार कर रही है और किस प्रकार शिक्षा का पाठ्यक्रम अधिक जीवनोपयोगी और सुरूचिपूर्ण बना रही है। वहां के अध्यापकों से बातचीत करने पर पता चला कि 1993–94 के बाद से आज तक सिर्फ कक्षा चार और कक्षा छः के गणित और संस्कृत की विषयवस्तु बदली गयी है। इसके अलावा सभी विषय ज्यों के त्यों हैं, ज्यादा से ज्यादा पुस्तकों में अधिक रंगों का प्रयोग कर उसे रंगीन कर दिया गया है जबकि विषयवस्तु में कोई खास बदलाव नहीं आया है। इसी में यह जोड़ना भी आवश्यक है कि सिर्फ कुछ कक्षाओं के विषयों (गणित) में बदलाव लाने से और उनसे जुड़ी ऊपर–नीचे की कक्षाओं में विषय वस्तु पुरानी ही रहने से छात्रों को समझने और उनका आपस में तालमेल बिठाने में काफी समस्या आ रही है। उदाहरण के लिए कक्षा छः का गणित बदलने से और कक्षा सात का ज्यों का त्यों रहने से दोनों कक्षाओं के गणित विषय में कोई तालबद्धता नहीं है और इसलिए इन दो कक्षाओं के गणित की विषय वस्तु का छात्र कोई सार्थक अर्थ नहीं निकाल पाते। इसी

प्रकार नांगल ब्लाक के ग्राम कोठरी धर्मसिंह के एक पूर्व माध्यमिक विद्यालय के शिक्षक के अनुसार "छठी कक्षा का गणित विषय जो बदला है वह बहुत अटपटा है क्योंकि सातवीं का तो पहले जैसा ही है इसलिए इस बदलाव का कोई महत्व नहीं है।

पाठ्यक्रम तथा पाठ्यवस्तु को एक मुख्य समस्या मानते हुए जिन तत्वों का आधार लेकर परियोजना की कल्पना की गई थी वैसा क्रियान्वयन में कहीं भी नहीं दिखाई पड़ता। पुअरका ब्लाक के खुर्द गांव में विश्व बैंक वित्त पोषित प्राथमिक शिक्षा केन्द्र की एक शिक्षिका के अनुसार "जो भी नया पाठ्यक्रम आ रहा है उसमें शिक्षकों के लिए इतने निर्देश हैं कि लगता है ये हमारे लिए बनाया गया हैं"। इसी स्कूल की प्रधानाचार्या यह मानती हैं – "बदला हुआ गणित बहुत कठिन है और कई चीजें तो हमें भी समझ में नहीं आती हैं, बच्चों के लिए कितनी मुश्किल होगी"। ऐसा लगता है कि 'बदलाव केवल बदलाव के लिए किया गया है उसके पीछे कोई खास सोच नहीं है। क्योंकि जिन शिक्षकों से भी बदले हुए विषयवस्तु पर बातचीत हुई वे ही इससे असंतुष्ट लगे और जब शिक्षक पाठ्यक्रम को स्वीकार नहीं कर पा रहे हैं तो उसको पढ़ाने में वे कितनी रूचि लेते होगें, यह समझना मुश्किल नहीं।

> व्यायाम एक ऐसा विषय है जिसे पांच अन्य विषयों के साथ लिया गया है लेकिन उसकी मौजूदगी सिर्फ नाम लेने तक दिखाई पड़ती है। सचमुच कितने बच्चों को व्यायाम इत्यादि सिखाये जाते होगें अथवा वह कितने नियमित होगें यह एक बड़ा सवाल है।

सहायक पाठ्य सामग्री भी परियोजना का एक मुख्य भाग है जिसके अर्न्तगत कुछ महत्वपूर्ण किताबें (जिन्हें वे सुरूचिपूर्ण भी

मानते हैं) दी जाती हैं जिनमें कहानियां इत्यादि होती हैं। इस सामग्री के बारे में पूछने पर पता चला कि वे विद्यालयों में दी तो जरूर जाती हैं (क्योंकि लखनऊ से पूरी सामग्री भेज दी जाती है) लेकिन उनको पढ़ने–पढ़ाने का न तो अवसर मिलता है और न ही वे इतनी रूचिपूर्ण कि बच्चे स्वयं आकर्षित होकर उन्हें पढ़ें। उदाहरण के लिए पाठ्य सामग्री की एक किताब है "मुर्गे ने बांग दी"। यह एक गरीब लोहार की कहानी है और बहुत अर्थपूर्ण भी है परन्तु इसे पढ़ना हंसी खेल नहीं, क्योंकि पूरी किताब बेतरतीब तरीके से बाउण्ड हुई है। शुरूआत छठे पेज से होती है और बीच में सभी पेज उल्टे–सीधे लगे हैं और फिर अन्तिम में पेज है। इसी प्रकार एक किताव है "पृथ्वी की कहानी" – जिसमें 64 पेजों की लम्बी उबाऊ व्याख्या में सिर्फ 7 चित्र बनाए गये हैं और वो भी काले सफेद। जो कि काले ज्यादा हैं सफेद कम। अतः उनके अर्थ निकालना भी एक मुश्किल काम है। इन किताबों से यह भी समझना मुश्किल है कि किस कक्षा के हिसाब से कौन–कौन सी किताबों की रचना की गई है। एक और उदाहरण देखें; "प्रदूषण" नाम की किताब में एक पाठ है "जोखिम समुद्र से"। शीर्षक ऐसा आभास दे रहा है कि मानवजाति को समुद्र से भी खतरा है जबकि अंदर की साम्रगी इसकी बिल्कुल उलट है।

पूरे विषयवस्तु में क्षेत्रीयता अथवा ग्रामीण वातावरण का कितना ध्यान रखा गया है यह इस बात से जाहिर होता है कि किसी भी पाठ्यक्रम की पुस्तक अथवा सहायक पाठ्य पुस्तकों में खेती–बाड़ी, ग्रामीण अंचलों के कार्य, शिल्प अथवा वहां के जीवन–शैली इत्यादि की कोई बात नहीं की गई है। इसी प्रकार परियोजना विषय वस्तु में महिलाओं के प्रति संवेदनशीलता लाने का भी दम भरती है लेकिन पूरा पाठ्यक्रम देखने पर इसका आभास होना तक मुश्किल है। विषय वस्तु में थोड़ा सा लचीलापन सिर्फ पहली अथवा दूसरी कक्षा में देखा जा सकता है। इसके अलावा पाठ्य सामग्री और पाठ बिल्कुल उसी रुप में वही पुराने ढ़र्रे पर हैं जैसे कि हमेशा से थे। इनमें नयापन अथवा रूचिपूर्ण शिक्षण की बात कितनी सार्थक है इसे शब्दों में बयान करना संभव नहीं जान पड़ता। पुस्तकालय में

पहुंचाई गई शिक्षा सामग्री सिर्फ लोहे की अलमारियों की शान बनकर रह गई है। बच्चों तक पहुंचने का अवसर उन्हें लगभग न के बराबर प्राप्त होता है।

शिक्षण पद्धति

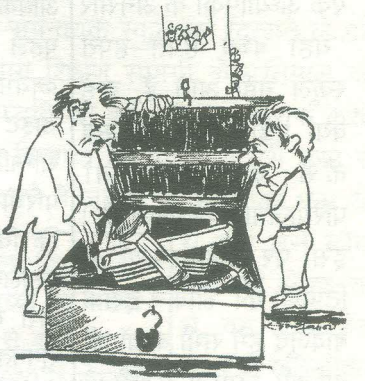

पुअरका ब्लाक के खुर्द प्राथमिक विद्यालय की प्रधानाचार्या के अनुसार स्कूल में बच्चे ज्यादातर इसलिए आते हैं, क्योंकि छात्रवृत्ति और गेहूं मिलता है (इस स्कूल में लगभग सभी बच्चे छात्रवृत्ति लेते हैं)। शिक्षण पद्धति और उसकी प्रभावशीलता का वर्णन करने के लिए यह कथन काफी है। परियोजना के सांतवें साल में शिक्षण पद्धति में कोई बदलाव नहीं आया है और सब कुछ ज्यों का त्यों है। जब शिक्षण सामग्री और उसके इस्तेमाल के बारे में पूछा गया तो उन्होंने खड़े होते हुए कहा –''जी हां सब मौजूद है चलिए आपको दिखाऊं, हम झूठ नहीं बोलते''। इस पर उनमें विश्वास जताते हुए जब पूछा गया कि विद्यालय में क्या शिक्षण सामग्री है और उसका इस्तेमाल कैसे करते हैं? तो उन्होंने बताया कि स्कूल में टार्च, स्प्रिट लैम्प, एक ग्राम से लेकर 1 किलो तक के वेट, 500 मि.ली. से लेकर 1 लीटर तक के मापक, इन्चीटेप, गेंद, रबड़ पेन्सिल और चार्ट मौजूद हैं। इन सभी सामग्री को विज्ञान अथवा गणित के लिए इस्तेमाल किया जाता है और उन्होंने एक–दो उदाहरण भी दिए लेकिन ये ही सवाल जब अन्य अध्यापिकाओं से पूछा गया तो वे प्रधानाचार्या का मुंह देखने लगीं और तब उन्होंने बताया कि यहां पर ज्यादातर अध्यापिकाएं नई आई हैं इसलिए इन्हें इतनी जानकारी नहीं है।

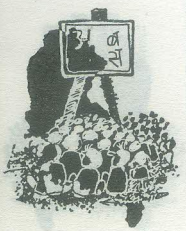

बात और आगे बढ़ने पर उन्होंने बताया कि हम लोगों को एन.पी. आर.सी. पर आदर्श पाठ इत्यादि भी कराया जाता है लेकिन वो

सिर्फ वक्त की बरबादी और औपचारिकता होती है। स्कूलों में आदर्श पाठ बनाकर पढ़ाना संभव नहीं। एक अध्यापिका के अनुसार ''यहां बच्चे हफ्ते–हफ्ते स्कूल नहीं आते हैं, इन्हें क्या पढ़ायें और वो सब कैसे कर पायें जो परियोजना वाले कहते हैं''। इस पर प्रधानाचार्या ने टिप्पणी की 'लेकिन इसके बावजूद हमें सभी बच्चों की हाजिरी लगानी पड़ती है नहीं तो अभिभावक हिंसक हो जाते हैं और लड़ाई–झगड़ा करने आ जाते हैं, क्योंकि उपस्थिति पूरी न होने से वजीफा और राशन कटने का डर होता है। इसी प्रकार बच्चों का आधे दिन में भाग जाना या अभिभावकों के कहने पर खेतों में काम करने के लिए पढ़ाई छोड़ देना एक आम समस्या है। यही वजह है कि सभी स्कूलों में पहली कक्षा की छात्र संख्या और पांचवी कक्षा की छात्र संख्या में भारी अन्तर है। उदाहरण के लिए खुर्द प्राथमिक विद्यालय में पहली कक्षा के तीन

सहारनपुर के विशेषज्ञ बेसिक शिक्षा अधिकारी जो कि आजकल दो कार्यालयों का कार्यभार देख रहे हैं; जिला शिक्षा अधिकारी और विशेषज्ञ बेसिक शिक्षा अधिकारी, आज से सिर्फ एक डेढ़ महीने पहले तक पांच–पांच कार्यालयों का कार्यभार उनके कंधे पर था जिसमें कि डाइट के प्राचार्य की जिम्मेदारी भी सम्मिलित थी। उनके अनुसार पूरी शिक्षा परियोजना की सबसे बड़ी खूबी यह है कि वित्त बहुतायत में उपलब्ध है और इसलिए हर चीज की सहूलियत है, क्योंकि वित्त की सुलभता से कार्य में काफी सुगमता हो गई है। दूसरा इस परियोजना के आने से विद्यालय खूब बन रहे हैं और आवश्यकता के अनुसार भवन बन पा रहे हैं। अन्त में उन्होंने ये भी जोड़ा कि शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ी है और यह पूछने पर कि इससे आपका क्या तात्पर्य है तो उत्तर था – तात्पर्य क्या है यह तो आप भी समझती हैं। गुणवत्ता बढ़ी है अर्थात गुणवत्ता बढ़ी है। और अधिक जोर देने पर उन्होंने बताया कि गुणवत्ता बढ़ी है अर्थात बच्चों के अंक प्रतिशत बढ़े हैं। यह पूछने पर कि इसमें खामियां क्या हैं – उन्होंने बताया कि सभी अधिकारियों के पास इतना काम है कि रख–रखाव ठीक से नहीं हो पाता है। दूसरा परियोजना में अनुभवी व्यक्तियों का बहुत अभाव है। यहां तक कि जिला परियोजना कार्यालय में भी कार्यकर्ताओं की कमी है।

अनुभाग थे जिसमें 250 से अधिक बच्चे हैं जबकि पांचवीं में सिर्फ 11 बच्चे।

एक और स्कूल जो कि देखा गया बलिया खेड़ी ब्लाक के मविकला गांव में स्थित है। यह स्कूल और खण्ड संसाधन केन्द्र (बी.आर.सी) एक ही प्रागंण में है। वहां के समन्वयक स्कूल को दिखाने ले गये और समझाते वक्त सारा समय शिक्षण सामग्री के इस्तेमाल को दिखाकर बदली हुई शिक्षण पद्धति की बढ़–चढ़ कर तारीफ करते रहे। सभी कक्षाओं में उन्होंने दिखाया कि विद्यालय पूरी तरह से शिक्षण सामग्री का इस्तेमाल करते हैं जबकि जो अध्यापक पढ़ा रहे थे और उसे ब्लैक बोर्ड पर लिख रहे थे वह एक डेढ़ मीटर से खड़े होकर भी मुश्किल से पढ़ा जा रहा था जबकि जो बच्चे सबसे पीछे बैठे थे वे उसे पढ़ पा रहे होंगे, यह सोचना ही बेमानी है। सभी अध्यापक साफ–साफ सुन्दर अक्षरों में ब्लेकबोर्ड पर लिख रहे थे लेकिन शब्दों का आकार इतना छोटा था कि एक डेढ़ मीटर से भी पढ़ा नही जा सकता था। इसी प्रकार कक्षा दो में जो प्लास्टिक की सामग्री इस्तेमाल की जा रही थी वह उन छोटे–बच्चों के लिए काफी छोटी थी।

> दोनों ही स्कूलों से पता चला कि गांव में प्राथमिक कक्षा की उम्र के बच्चों की संख्या स्कूल में आ रहे कुल बच्चों से कहीं ज्यादा है और ज्यादातर बच्चे आस–पास के प्राइवेट स्कूलों में जाते हैं और वहां के प्राइवेट स्कूल खूब कमा रहे हैं। उनके अनुसार प्राइवेट स्कूलों की और उनमें पढ़ने वाले बच्चों की संख्या दिन--पर–दिन बढ़ती जा रही है।

यहां पर जब समन्वयक से स्कूल ड्राप–आउट बच्चों के बारे में पूछा गया तो बोले "ऐसा कहीं और होता होगा हमारे यहां तो नहीं होता।" और जब प्रधानाचार्या से पहली कक्षा के छात्रों के बारे में पूछा तो उन्होंने संख्या बताई 197 जबकि पांचवीं में कुल 30–35 छात्र ही पढ़ रहे थे। यह सुनकर समन्वयक थोड़ी देर चुप रहे और फिर बोले हां ये तो पुराने बच्चे हैं हम अब आगे से ख्याल रखेंगे"। लेकिन जो बच्चे प्राथमिक शिक्षा के साल पूरे नहीं करते उन्हें वापस

लाने के लिए कोई खास प्रयास नहीं किए जाते और न ही कोई ऐसी मुहिम आज तक चली है कि बच्चों की शिक्षा पूरी करवाने का प्रयास किया जाए। यहां के अधिकारियों और अध्यापकों ने भी यह बताया कि छात्रवृत्ति और पौष्टाहार की वजह से छात्रों का नामांकन काफी बढ़ा है। शिक्षण पद्धति अथवा विषय वस्तु का बदलाव या उसकी भूमिका का कहीं कोई जिक्र नहीं था। इस विद्यालय में पता लगा कि पुस्तकालय भी है। जब देखा तो एक लोहे की अलमारी में ऊपर शीशे वाले सेल्फ में कुछ किताबें रखी थीं और समन्वयक ने इशारे से बताया कि यह लाइब्रेरी है और उसे देखकर यह कतई अदांजा नहीं लगाया जा सकता कि छात्र अथवा शिक्षक कभी इसमें से किताबें भी लेते होंगे या ये किताबें आम लोगों के लिए भी हैं।

बी.आर.सी. पर यह भी पता चला कि शिक्षण पद्धति और उसकी गुणवत्ता इत्यादि के लिए अब एक कोर टीम की भी संरचना की गई है। जिला स्तर पर कोर टीम में विशेषज्ञ बेसिक शिक्षा अधिकारी डाइट के प्राचार्य जो कि इसके संयोजक भी हैं, एक डाइट के प्रवक्ता और बी.आर.सी. के समन्वयक होते हैं जबकि ब्लाक स्तर कोर टीम में बी.आर.सी. के समन्वयक, सहायक बेसिक शिक्षा अधिकारी, एन.पी.आर.सी. के समन्वयक और सहायक बी.आर.सी. समन्वयक शामिल होते हैं। इस कोर टीम की संरचना हाल ही में हुई है और इसलिए इसके मुख्य कामों का उद्देश्य मॉनिटरिंग ही है खासकर शिक्षण से संबन्धित कार्य और गुणवत्ता विश्लेश्षण की मॉनिटरिंग।

शिक्षक–छात्र संबंध

हिन्दुस्तान टाइम्स की एक खबर के अनुसार "शिक्षक द्वारा पिटाई से छात्र की मृत्यु"। मृत्यु जैसे चरम हादसे बहुत ही कम होते हैं लेकिन शिक्षक द्वारा छात्रों की पिटाई आम बात है। आमतौर पर शिक्षकों का यह मानना है कि छात्र बिना मार खाए समझते ही नहीं। ऐसे वातावरण में जहां दण्डात्मक पद्धति ही शिक्षक–छात्र संबंधों की बुनियाद हो, यह पता लगाना कि वर्तमान परियोजना से

शिक्षक–छात्र संबंधों में क्या बदलाव अथवा सुधार आया है, अत्यन्त कठिन काम था। सवाल पूछने पर बहुत ही आदर्श उत्तर मिल रहे थे और उससे संबंधों के बारे में कोई खास जानकारी भी उपलब्ध नहीं हो पा रही थी। ऐसे में यह निश्चित किया गया कि शिक्षक छात्र संबंधों के बारे में सिर्फ अवलोकन और उनके आपस की बातचीत इत्यादि से ही अदांजा लगाया जाय। अतः इसके अन्तर्गत अध्यापकों द्वारा दिए गये उत्तरों का सदर्भ लेते हुए भी स्वयं के विवेक और समझ का खुलासा अधिक है।

वैसे तो सभी विद्यालय और अध्यापक अपने पढ़ाने के तरीके और शिक्षण सामग्री इत्यादि का इस्तेमाल ही अपना प्रमुख कर्तव्य मानकर इससे आगे कुछ भी सुनने को तैयार नहीं थे। जब हमने एक पूर्व माध्यमिक विद्यालय के अध्यापक से सवाल किया कि जब बच्चा बार–बार समझाने पर भी न समझे तो क्या आपको लगता है थोड़ा दण्ड देने से उसकी समझ में आ जाएगा। इस पर अध्यापक तुरन्त सहमत हो गये और उत्तर मिला –''वैसे तो हमारी यही कोशिश रहती है कि बच्चे को बिना मारे ही समझा दें लेकिन कुछ बच्चे इतने शैतान होते हैं, खासकर ये गांव के बच्चे तो बहुत ही बदमाश होते हैं। इसलिए थोड़ी बहुत सख्ती तो करनी ही पड़ती है''। इसका दूसरा उदाहरण एक दूसरे विद्यालय में प्राध्यापिका द्वारा अध्यापिका को दिया हुआ निर्देश है जो इस प्रकार है –''बहन जी आप इन बच्चों को एक–एक तमाचा लगा दीजिए, तब आप की बात सुन लेंगे।''

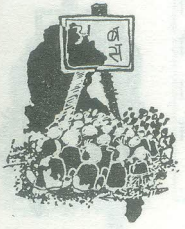

किसी भी विद्यालय में बच्चों को बहुत खुशगवार तरीके से अध्यापिकाओं/अध्यापकों के साथ बातचीत करते हुए नहीं पाया गया। सभी बच्चे सहमें से जमीन पर बैठे थे और शिक्षक खड़े होकर अथवा कुर्सी पर बैठे कुछ बता या पढ़ा रहे थे। सिर्फ एक कक्षा में

ऐसा मिला कि बच्चे सामान्य रूप से बैठकर बातचीत कर रहे थे और उन अध्यापिका का व्यवहार भी छात्रों के प्रति नरम था। इसके अलावा सभी स्कूलों के वातावरण में तनाव और असहजता थी। शिक्षक भी बातचीत करने पर विनम्र कम और डरे हुए ज्यादा लगे क्योंकि उन पर परियोजना मूल्यांकन का भय साफ तौर पर देखा और महसूस किया जा सकता था। छात्रों को भी उसी अनुसार तैयार किया गया है। कुछ कक्षाओं में अतिथि को देखते ही बच्चों ने खड़े होकर नमस्ते की और फिर तब तक वे खड़े रहे जब तक अध्यापक ने बैठने के लिए नहीं कहा।

बच्चों से बात करने पर भी इसका खुलासा हुआ कि उन्हें गाहे–बगाहे शिक्षक के दण्ड का शिकार होना पड़ता है और शिक्षक केवल किताबों के पाठ्यक्रम के अनुसार ही पढ़ाते हैं। उनमें किसी और विषय अथवा छात्र की रूचि और उसके अनावश्यक सवालों के लिए कोई स्थान नहीं है। यह पूछने पर कि क्या अध्यापक आप लोगों के साथ कोई खेल खिलाते हैं और उसमें हिस्सा लेते हैं तो छात्रों ने बताया कि वे कभी–कभी खेल खिलाते हैं लेकिन खुद सिर्फ दूर खड़े होकर निर्देश ही देते हैं और फिर हमें खेलने के लिए छोड़ देते हैं। इसी प्रकार छात्रों ने यह भी बताया कि यदि वे साफ होकर नहीं जाते तब भी शिक्षक बहुत डांटते हैं और कहते हैं कि "अपने मां–बाप से कहो साफ करके भेजा करें"। लेकिन यह पूछने पर कि क्या यहां अभिभावक – शिक्षक बैठक होती है तो सभी ने सकारात्मक उत्तर दिया लेकिन यह पूछने पर कि इन बैठकों में क्या होता है उन्हें कुछ सूझा नहीं तो केवल यह कह कर पीछा छुड़ाया कि 'सफाई के बारे में बताते हैं और कहते हैं कि बच्चों को रोज विद्यालय भेजा करें'। यह बात उनकी पहली बातचीत से स्पष्ट थी कि अभिभावकों के प्रति अध्यापकों का रवैया स्वस्थ्य नहीं था। एक अध्यापक के अनुसार "यह गांव ही पूरा अनपढ़ है इन बच्चों से क्या उम्मीद रखें, मां–बाप को बच्चों की शिक्षा के प्रति कोई लगाव नहीं है वे ही उन्हें खेतों पर जबरदस्ती ले जाते हैं काम करवाने के लिए। हालांकि कुछ तो बहुत होशियार बच्चे भी होते हैं, अब बताइये हम क्या करें"।

व्यवस्था और माहौल

विशेषज्ञ बेसिक शिक्षा अधिकारी से लेकर स्कूलों में अध्यापकों तक सभी की परियोजना उपलब्धि पर पूर्ण सहमति है और वह है– भवन निर्माण। यदि यह भी एक उपलब्धि है तो इसी से शुरू करें। पहला, देखा गया स्कूल जो कि एक पूर्ण इमारत है जिसमें 3 कक्षाएं और एक स्टोर है। स्कूल में पढ़ने वाले छात्रों की सख्या 400। एक कमरे में ज़्यादा से ज़्यादा 80 बच्चे बैठ सकते हैं, वो भी तब जबकि बच्चे सट कर बैठें। बच्चे सिर्फ सर्दियों के तीन–चार महीने बाहर बैठ सकते हैं इसके बाद गर्मियों और बरसातों में अन्दर बैठना ही पड़ेगा। पूरे स्कूल में एक छायादार पेड़ तक नहीं जहां पर कक्षाओं में न बैठ पा रहे बच्चे छांव में बैठ कर पढ़ सकें।

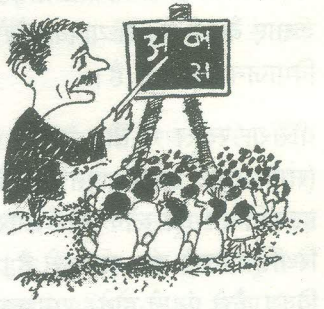

भ्रमण के दौरान यह भी पता चला कि इस स्कूल के पुराने प्रधानाचार्य निलबिंत हो गये थे, क्योंकि उन्होंने छात्रवृत्ति में एक बड़ा घोटाला किया था। शायद इसी की वजह से वर्तमान प्रधानाचार्या भी काफी चिन्तित और सहमी हुई प्रतीत हुईं। उन्होंने पूछा भी "आप हमें बता दीजिए विश्व बैंक वाले क्या पूछते हैं। हम तो सीधे–सादे अध्यापक हैं लेकिन आजकल सुना है पता नहीं क्या–क्या होता है।" उनके अनुसार "हम तो अपनी तरफ से पूरी कोशिश करते हैं लेकिन अधिकारी अगर न समझ पायें या फिर हमसे कोई गलती हो जाये तो हम समझेंगे भी नहीं कि क्या करना है।" यह एक ऐसा स्कूल है जहां पर सभी अध्यापिकाएं हैं और 450 बच्चों पर 6 अध्यापिकाएं और 1 प्रधानाचार्या है। प्रधानाचार्या बहुत असुरक्षित महसूस करती हैं, क्योंकि कोई पुरूष अध्यापक नहीं है। हम चाहते हैं कि अब जो भी नई भर्ती हो तो पुरूष अध्यापक ही आएं।"

दूसरा, स्कूल में 450 छात्र, तीन कमरे, दो कमरों में पहली कक्षा के दो अनुभाग बैठे थे और एक में कक्षा पांच के छात्र। अन्य सभी कक्षाएं बाहर धूप में बैठी थीं। अर्थात लगभग 200 छात्र बाहर बैठे थे। ये छात्र अन्य मौसमों में कहां जाते हैं? एक ही कमरे में दो–दो कक्षाएं बैठती हैं? अध्यापक कैसे पढ़ाते हैं वहां किसी तरह का कोई विभाजन भी नहीं है।

तीसरा, स्कूल में तीन कमरे, (शौचालय इत्यादि नहीं) 19 छात्र, (सभी लड़के) बाहर चबूतरे पर बैठे थे। विद्यालय में कुर्सी, मेज, चार्ट, इत्यादि तो दूर ब्लैक बोर्ड और चॉक तक नहीं उपलब्ध था। यह स्थिति पिछले एक साल से है। गणित अथवा विज्ञान इत्यादि जैसे विषय कैसे पढ़ाते होगे? समझना असंभव। वे भी नहीं जानते। पूछने पर कि बिना ब्लैक बोर्ड के आप कैसे काम चलाते हैं, उत्तर था –"जी चला लेते हैं"।

अब यदि छात्रों के बैठने की व्यवस्था देखें तो पहले स्कूल में लगभग सभी बच्चे जमीन पर बिना टाट–पट्टी के बैठे हुए थे। सर्दियों में जब कि ठण्डी जमीन पर पांव रखना मुश्किल है बच्चे 5–6 घंटे जमीन पर बैठते हैं। अन्दर कमरों में भी कहीं–कहीं बच्चे फर्श पर बिना टाट के ही बैठे थे और कहीं–कहीं वे अपने बोरों पर। बी.आर. सी. के प्रागंण में ही बने स्कूल में जो कि बाहर से आने वाले सर्वेक्षण अथवा मूल्यांकनकर्ताओं के लिए आदर्श जगह है, कक्षाओं में ब्लैक बोर्ड का इस्तेमाल होता हुआ दिखा। इसके अलावा सभी जगह बच्चे यूं ही मौखिक पढ़ रहे थे और कहीं भी पूरे ब्लैक बोर्ड उपलब्ध नहीं थे।

अध्यापकों की उपलब्धता के बारे में बात करें तो, 400 छात्रों वाले स्कूल में सिर्फ 7 अध्यापक । 450 छात्रों वाले स्कूल में 8 अध्यापक और 19 छात्रों पर तीन अध्यापक यहां हर कक्षा के लिए एक अध्यापक है जबकि छठी कक्षा में दस छात्र, सातंवी में सात और आठवीं कक्षा में सिर्फ दो छात्र। बलिया खेड़ी के समन्वयक के अनुसार सिर्फ उस ब्लाक में 97 विद्यालय हैं जिनमें 8–9 स्कूलों में सिर्फ एक अध्यापक हैं और छात्र 300 से ज्यादा। इसी प्रकार

लगभग 40–45 स्कूलों में सिर्फ 2 या 3 अध्यापक जिनमें छात्र संख्या 400–500 के बीच है जबकि कुछ स्कूलों में अध्यापक आवश्यकता से अधिक हैं। इसका कारण पूछने पर पता लगा कि ये स्कूल सड़क के किनारे हैं इसलिए अध्यापकों ने ऊपर से सोर्स लगाकर अपना स्थानान्तरण उन में करवा लिया, चाहे उनकी जरूरत हो या नहीं।

हर स्कूल में 2000 रूपये सलाना वहां के सौन्दर्यीकरण के लिए दिए जाते हैं ताकि स्कूल बाहर से लिपे–पुते नजर आयें और आर्दश विद्यालय में कुछ चित्र और नक्शे भी बने हुए थे लेकिन वातावरण में सुन्दर जैसा कुछ नहीं था। सड़क किनारे बने हुए स्कूलों में बाउण्डरी तक नहीं थी जिसकी वजह से अध्यापकों के अनुसार – अहाता न होने से बच्चे स्कूल में छुट्टी होने से पहले ही भाग जाते हैं और हमें पता भी नहीं लगता''। इसी प्रकार सड़क पर पूरे दिन यातायात चलता है और उससे छात्रों की एकाग्रता में विघ्न पड़ता है, जबकि देखे गये पूर्व माध्यमिक स्कूल, जिसे बने सिर्फ एक साल हुआ है, उसकी दीवारें तक चटकी थीं और अध्यापकों के अनुसार ''उसकी छत की जुड़ाई इतनी कमजोर है कि अगली बारिश के बाद तो कभी भी बैठ सकती हैं''। ऐसा तब जबकि निःशुल्क शिक्षा के अर्न्तगत प्राथमिक छात्रों से एक रूपया महीना और पूर्व माध्यमिक छात्रों से दो रूपये महीने विकास शुल्क लिया जाता है। जहां कहीं बिजली की उपलब्धता है वहां पर 1 रूपया विद्युत शुल्क भी लिया जाता है।

परियोजना के पूरे ढांचे में मॉनिटरिंग और व्यक्तिगत निरीक्षण को अहम स्थान दिया गया है। लेकिन सभी अधिकारी मानते हैं कि काम की अधिकता के कारण जैसे निरीक्षण होना चाहिए वैसे नहीं हो पाता है। कैसे होता है, यह वहां के बी.आर.सी. और एन.पी.आर. सी. के अधिकारियों से जानने को मिला। विशेषज्ञ बेसिक शिक्षा अधिकारी के पास दो–दो विभागों का कार्यभार है और हफ्ते के छः दिनों में कम से कम 12 बैठकें, ऐसी स्थिति में उन्होंने सभी ए.बी. एस.ए. को ये निर्देश दिए हैं कि वे तीन दिन बी.आर.सी. पर रहेंगे

और बाकी के तीन दिन क्षेत्र के निरीक्षण करेंगे। जबकि सभी ए.बी.एस.ए. को हफ्ते में दो दिन जिला कार्यालय की बैठकों में भी भाग लेना होता है। बाकी सभी प्रशासनिक कार्य भी करने होते हैं जिसके कारण, ए.बी.एस.ए. ने अपने मातहत उप सहायक निरीक्षक को क्षेत्र और भवन निर्माण के निरीक्षण का कार्य सौंप दिया है और एस.डी.आई. अपने सभी वित्त एवं प्रशासनिक कार्यों के साथ निरीक्षण का कार्य भी देखता है।

निरीक्षण कर्ताओं का दूसरा मुख्य केन्द्र होता है बी.आर.सी.। यहां पर समन्वयक और सहायक समन्वयक शिक्षा की गुणवत्ता और भवन निर्माण निरीक्षण कार्य के अलावा प्रशिक्षणों का आयोजन करने के लिए भी उत्तरदायी होते हैं। अन्य कार्यों में शामिल हैं जिला स्तर की बैठकों में भाग लेना, लखनऊ के प्रशिक्षण, डाइट प्रशिक्षण, तथा समय–समय पर होने वाली कार्यशालाएं और सेमिनार । सहायक समन्वयक का अधिकतर समय आंकड़ों को इकट्ठा करने और जिला कार्यालय एवं बी.आर.सी. के बीच लिंक बिठाने में खर्च होता है। अतः बी.आर.सी. की ज्यादातर निरीक्षण संबंधी जानकारियां एन.पी.आर.सी. से पूरी की जाती हैं। एन.पी.आर.सी. जिसमें कि एक प्राथमिक स्तर का अध्यापक होता है जिसे हर महीने में कम से कम 12 विद्यालयों का भ्रमण जरूर करना होता है, दो बार बी.आर.सी. की बैठकों में भाग लेना आवश्यक है और ऊपर से आये दूसरे सभी तरह के आदेशों का पालन। इसके अलावा हर महीने की किसी एक तारीख को उस न्याय पंचायत के अर्न्तगत आने वाले विद्यालयों के लिए प्रशिक्षण चर्चा का आयोजन जिसमें आदर्श पाठ करवाया जाता है। और एन.पी.आर.सी. के निरीक्षण में क्या होता है इसके लिए एक अध्यापक के वक्तव्य पर गौर करें। निरीक्षण में होता है कि "अगर निरीक्षणकर्ता और अध्यापक आमने–सामने से आ रहे हों तो निरीक्षणकर्ता दौड़कर पहले घुस जाएगा और लाल स्याही लगा देगा और फिर जब तक 500 रूपये से जेब न गर्म करें तब तक माफी नहीं मिलती है।" इसी प्रकार यह पूछने पर कि निरीक्षणकर्ता क्या देखते हैं? किसी अध्यापक के पास कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं था,। अध्यापक सिर्फ इतना ही कह पाए कि वह आकर देखते

हैं कि हम क्या पढ़ा रहे हैं और फिर यदि उन्हें कुछ कहना होता है तो कहते हैं कि आदर्श पाठ के हिसाब से पढ़ाइये।

परीक्षा पद्धति

परीक्षाओं के बारे में पूछने पर बताया गया कि स्कूलों में पुरानी पद्धति के अनुसार ही तिमाही, छमाही और वार्षिक परीक्षाएं होती हैं। और शिक्षा पत्र जिले से बन कर आते हैं जिनमें प्रश्न लिखे होते हैं और उत्तर के लिए दो या तीन पंक्तियां खाली छोड़ दी जाती हैं। परीक्षा पत्र बनाने में स्कूल के अध्यापकों का कोई हाथ नहीं होता है और वे अध्यापक भवन, सहारनपुर से बन कर आते हैं। मूल्यांकन का यह तरीका सर्व प्रचलित है और छोटी प्राथमिक कक्षाओं जैसे कि पहली कक्षा के लिए संक्षिप्त प्रकार के प्रश्न आते हैं जबकि यह अपने आप में एक सवाल है कि यह प्रश्न भी बच्चे पढ़ पाते हैं या नहीं। लेकिन यह किसी भी अध्यापक ने नहीं बताया कि पहली अथवा दूसरी कक्षा का मूल्यांकन मौखिक ही होता है। सभी के लिए लिखित परीक्षा अनिवार्य है।

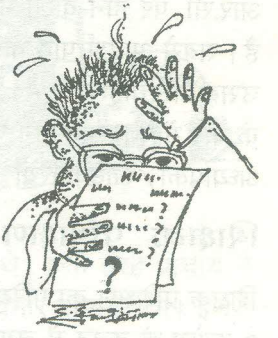

इसी तरह से शिक्षा की गुणवत्ता का मूल्यांकन भी प्रश्नों और उनके उत्तरों के आधार पर किया जाता है उदाहरण के लिए जब एन.पी. आर.सी. के समन्वयक से पूछा गया कि स्कूलों में शिक्षा की गुणवत्ता आप कैसे सुनिश्चित करते हैं तो उन्होंने बताया "हम बच्चों से संक्षिप्त प्रश्न पूछते हैं और यदि उन्होंने उसका उत्तर दे दिया तो समझ लेते हैं कि शिक्षा की गुणवत्ता है"। इसी तर्ज पर विशेषज्ञ ने भी टिप्पणी करते हुए कहा कि यदि "बच्चे अच्छे अंक प्रतिशत से पास हों तो शिक्षा की गुणवत्ता पता लग जाती है"। पूरी शिक्षा पद्धति और तंत्र; परीक्षा और उसमें आये प्रतिशतों से ही शिक्षा की गुणवत्ता माप रहा है इसके अलावा न तो निरीक्षक अधिकारी और

न ही अध्यापक गुणवत्ता अथवा शिक्षा पद्धति की सफलता मापने की किसी अन्य विधि से परिचित है और न ही इस्तेमाल करते हैं।

दूसरी तरफ शिक्षक का मूल्यांकन भी सिर्फ इसी आधार पर होता है कि जब निरीक्षक कोई प्रश्न करता है तो छात्र उसका संतोषजनक उत्तर दे पाते हैं अथवा नहीं। इसके अलावा उनके आदर्श पाठ (जोकि लगभग कभी भी इस्तेमाल नहीं होते हैं) बनाने के तरीके इत्यादि को भी मूल्यांकन में शामिल किया जाता है। एक शिक्षिका के अनुसार "आदर्श पाठ एक फिजूल प्रक्रिया है जिसका यथार्थ में कोई इस्तेमाल नहीं"। जबकि एक और शिक्षक ने बताया "एन.पी. आर.सी. पर होने वाली मासिक बैठकें ही हमारे लिए परीक्षा जैसी हैं। सबसे आदर्श पाठ करवाया जाता है जिसका ठीक नहीं बैठता उसकी खिंचाई होती है। इसके अलावा और कुछ मूल्यांकन पद्धति के बारे में पता नहीं लग पाया और न ही कोई नया तरीका वहां के अध्यापकों/अधिकारियों ने बताया।

शिक्षक प्रशिक्षण

शिक्षक प्रशिक्षण का परियोजना में अहम स्थान है और उसके लिए 2 करोड़ के बजट में लगभग 48 लाख रूपये का प्रवधान है परन्तु प्रशिक्षण का क्या नतीजा है यह ऊपर आये संदर्भों से समझा जा सकता है।

प्रशिक्षण के लिए जिला में तीन स्तरों पर व्यवस्था होती है :–

जिला शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान (डाइट)

सहारनपुर जिले की शिक्षक प्रशिक्षण आवश्यकताओं को पटनी स्थित डाइट के जरिये पूरा किया जाता है जो कि जिला स्तर पर प्रशिक्षण, उनके निर्धारण, ब्लाक स्तर पर प्रशिक्षण के कार्यक्रमों और उनकी देख–रेख तथा जिला स्तर पर प्रशिक्षण संबंधी प्रशासनिक एवं वित्त व्यवस्था आदि के लिए जिम्मेदार होता है। संस्थान का मुखिया प्राचार्य होता है जो कि उप–जिला निदेशक की रैंक का अधिकारी माना जाता है, जो उच्चतम विद्यालय में प्रधानाचार्य के पद पर कार्य कर चुका हो।

उसके अलावा संस्थान में 6 विभाग हैं, हर विभाग का एक प्रभारी (जो कि उत्तर प्रदेश प्रशासनिक शिक्षा सेवा के तहत आता है) होना चाहिए। इसी अनुपात में प्रवक्ता और अधिवक्ताओं की उपस्थिति भी सुनिश्चित होनी चाहिए।

यह ढांचा वह आदर्श ढांचा है जो कि प्रशिक्षण संस्थान में होना चाहिए परन्तु यथार्थ में यह सब पूरी क्षमता में मौजूद होना एक दूसरी लड़ाई है। उदाहरण के लिए सहारनपुर डाइट में फिलहाल कुल तीन प्रभारी थे जो कि दो महीने पहले आये थे। इससे पहले प्रवक्ता ही प्रभारी थे जो कि प्रशिक्षण की व्यवस्था तथा प्रशिक्षण देने का कार्य भी संभालते थे। इसी तरह प्राचार्य ने भी कुल 4–5 महीने पहले ही अपना कार्यभार संभाला था। इससे पहले बेसिक शिक्षा अधिकारी के पास चार अन्य कार्यभारों के साथ इसका अतिरिक्त कार्यभार था। फिलहाल संस्थान में प्राचार्य के अलावा प्रवक्ता और प्रभारी मिलाकर कुल 17 अधिकारी थे।

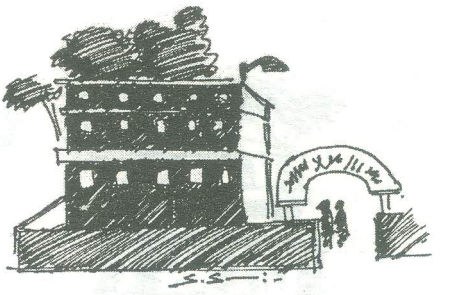

जब संस्थान का दौरा किया गया, उस समय वहां पर सेवापूर्वागम प्रशिक्षण चल रहा था और प्राचार्य अवकाश पर थे अतः उनकी अनुपस्थिति में जो प्रभारी उनका काम संभाल रहे थे उनसे ही बात हो सकी। इसके अलावा गणित के प्रवक्ता से काफी विस्तार में बातचीत हुई। देखने पर भवन के दो–चार कमरों को छोड़कर बाकी सभी कमरे बंद पड़े हुए थे। दूसरी मंजिल धूल–धूसरित थी, जैसे कि महीनों से किसी ने ऊपर जाने का कष्ट न किया हो। महिला शौचालय सार्वजनिक शौचालय से भी ज्यादा खस्ता हालत में था और ऐसा कोई भी संकेत नहीं मिल रहा था कि वह इमारत पूरी तरह से कभी इस्तेमाल होती होगी।

ब्लाक संसाधन केन्द्र – बी. आर. सी.

ब्लाक स्तर पर प्रशिक्षण के लिए ब्लाक संसाधन केन्द्र खोले गये हैं जिसके भवन में एक प्रशिक्षण हाल तथा दो अन्य कमरे भी मौजूद थे। यहां के मुखिया ब्लाक स्तर पर समन्वयक होते हैं और उनकी सहायता के लिए एक सहायक समन्वयक होता है। शिक्षा परियोजना की निगरानी और मूल्यांकन के अलावा प्रशिक्षण आयोजित करना और फेसिलिटेट करना भी सहायक समन्वयक की जिम्मेदारी होती है। इस कार्य के लिए हर प्रशिक्षण में ये डाइट के प्रवक्ता को भी बुला सकते हैं। डाइट द्वारा दिए गये सभी प्रशिक्षण निर्देशों एवं कार्यक्रमों को मूर्तरूप देना ही इनका मुख्य उद्देश्य होता है। इसके अलावा बी.आर.सी., बेसिक शिक्षा अधिकारी कार्यालय और एन.पी.आर.सी. के बीच में एक कड़ी का काम भी करते हैं।

न्याय पंचायत संसाधन केन्द्र – एन.पी.आर. सी.

ग्राम स्तर पर प्रशिक्षण के लिए जिम्मेदार न्याय पंचायत संसाधन केन्द्र हर एक न्याय पंचायत के लिए एक होती है। इसके तहत 6–8 विद्यालय आते हैं। एन.पी.आर.सी. में एक प्रधान अध्यापक के स्तर का समन्वयक होता है जिसे हर महीने की किसी एक तिथि को विद्यालयों के शिक्षकों के साथ बैठक करना और उनको आदर्श पाठ करवाना अथवा अन्य किसी मुद्दे पर चर्चा करनी होती है। इसके अलावा भवन निर्माण के कामों की निगरानी रखना भी उनके मुख्य कार्यों में शामिल है।

वित्त एवं प्रशासन

बेसिक शिक्षा अधिकारी के कार्यालय द्वारा दिए गये आकड़ों के अनुसार इस साल डाइट को 48,00,000 रूपये की राशि प्रशिक्षण कार्यो के लिए दी गई जिसमें से लगभग 22,00,000 अभी (दिसम्बर महीने) तक बकाया पड़ी थी। दूसरी तरफ गणित के प्रवक्ता से बातचीत करने पर पता चला कि प्रशिक्षणों के दौरान ऑडियो विजुअल तकनीक का इस्तेमाल बिल्कुल नहीं होता है, क्योंकि इन सब चीजों के लिए वित्त उपलब्ध नहीं है। इसी प्रकार वहां के प्रशिक्षणार्थियों से जब बात हुई तो वे व्यवस्था और भोजन को लेकर अत्यधिक असंतुष्ट थे और चाहते थे कि हम उनके साथ खाना अवश्य खायें जिससे पता लग सके कि उन्हें क्या मिल रहा है। (जो कि संभव नहीं हो पाया)। संस्थान में न तो पूरा स्टाफ है और न ही आधुनिक प्रशिक्षण यंत्रों अथवा सुविधाओं का इस्तेमाल होता है। बेसिक शिक्षा अधिकारी कार्यालय के अनुसार प्रशिक्षण के लिए दिया गया वित्त कभी किसी भी साल पूरा उपयोग नहीं होता है और उसे अगले साल के लिए कैरी फारवर्ड करना पड़ता है तो दूसरी तरफ संस्थान में वित्त की कमी की शिकायतें सुनने को मिलीं।

प्रशिक्षण कार्यक्रम और सामग्री

इकट्ठी की गई जानकारी के अनुसार डाइट इत्यादि में पांच तरह के प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं :-

1. बोधात्मक प्रशिक्षण
2. दक्षता आधारित भाषा

PEACE LIBRARY
Acc No. 1105
10/3/05
NEW DELHI

3. अनुपूरक अध्ययन सामग्री
4. गणित प्रशिक्षण
5. विज्ञान प्रशिक्षण

अध्ययन के दौरान देखे गये डाइट में सेवापूर्वागम प्रशिक्षण और बी. आर.सी. में समेकित शिक्षा प्रशिक्षण (विकलांग बच्चों की पहचान और शिक्षा के लिए) चल रहा था।

यह पूछे जाने पर कि प्रशिक्षण कार्यक्रम किस तरह निर्धारित होते हैं डाइट ने एस.सी.ई.आर.टी. (जिला शैक्षणिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद) लखनऊ और बी.आर.सी. ने डाइट को जिम्मेदार बताया। डाइट के प्रवक्ता के अनुसार प्रशिक्षण कार्यक्रम निर्धारित करने में उनका या यहां के किसी भी विभाग का कोई हाथ नहीं होता है। ज्यादातर कार्यक्रमों की सूची और उनकी विषय वस्तु सभी एस.सी.इ.आर.टी. लखनऊ से निर्धारित होकर आती हैं। एक और तरीका जो कि प्रशिक्षण निर्धारित करने के लिए किया जाता है, काफी मज़ेदार है। डाइट प्रवक्ता के अनुसार यहां जो भी प्रवक्ता जिस किसी भी प्रशिक्षण के लिए बाहर जाते हैं, वही प्रशिक्षण वापस आकर आयोजित करते हैं और संदर्भ व्यक्ति तैयार करते हैं। दूसरी तरफ बी.आर.सी. के समन्वयक ने बताया कि उन्हें जो भी प्रशिक्षण डाइट में अथवा लखनऊ में दिया जाता है वे उसे आकर ब्लाक स्तर पर आयोजित करते हैं।

अर्थात इन प्रशिक्षण संस्थानों में भेड़चाल का एक अलग ही वातावरण देखने को मिलता है। डाइट के प्रशिक्षक जो प्रशिक्षण लेते हैं या लेगें वह एस.सी.इ.आर.टी. से निर्धारित होता है। उसकी आवश्यकता है या नहीं इसके लिए कोई प्रणाली सुनिश्चित नहीं की गई है। इसी प्रकार डाइट के प्रवक्ता बिना किसी ठोस कारण अथवा तथ्यों के उसे वापस आकर सिर्फ इसलिए आयोजित करते हैं, क्योंकि वे प्रशिक्षण लेकर आते हैं और फिर उसी तरह ब्लाक स्तर पर, स्थानीय आवश्यकता और परिवेश को समझे बिना उन्हीं प्रशिक्षणों को आयोजित करते हैं।

दूसरा मुख्य प्रश्न जो उठता है वह है – प्रशिक्षकों की दक्षता का। सिर्फ एक प्रशिक्षण में भाग लेने के बाद क्या वे इतने दक्ष हो जाते हैं कि फिर उसी तरह के अन्य प्रशिक्षण सफलतापूर्वक आयोजित कर सकें। जबकि वहां के प्रशिक्षक या तो काफी नये हैं अथवा प्रशिक्षण उनकी पृष्ठभूमि में नहीं रहा है। विद्यालयों के प्रधानाचार्य अथवा उपस्नातक, बी.एड. करने के बाद सफल प्रशिक्षक बन पाएंगे, यह अपने आप में एक सवाल है। अनुभव होना एक बात है और उस अनुभव को सीखने–सिखाने के लिए प्रशिक्षण विधि के सांचे में फिट कर देना एक अलग किस्म की क्षमता है।

प्रशिक्षण कितने कारगर सिद्ध होते हैं इसकी पुष्टि एक छोटे से उदाहरण से होती है जब हमने प्रशिक्षण प्रतिभागियों से बात की तो उनका कहना था कि यह सब सिर्फ दिखावा है असलियत में इन सब पर अमल न तो होता है और न ही होना संभव है। एक और अध्यापिका के अनुसार "आदर्श पाठ तो एक तमाशा है, आप ही बताइये क्या गांव के स्कूलों में इस आदर्श पाठ के तरीके से पढ़ाई हो सकती है"।

प्रशिक्षण विषय वस्तु

प्रशिक्षण की विषय वस्तु के बारे में पूछने पर पता लगा कि प्रशिक्षण विषय वस्तु तथा प्रतिभागियों को दी जाने वाली सामग्री सभी कुछ लखनऊ से आता है अर्थात यहां भी क्षेत्रीय ग्राह्यता की कोई संभावना नजर नहीं आती थी। प्रशिक्षण के दौरान भिन्न को समझाने के लिए बच्चों को केक और उसके बटवारे का उदाहरण दिया जा रहा था। यह इस बात का जीता जागता उदाहरण है कि प्रशिक्षण और शिक्षण कार्य में क्षेत्रीयता का कितना ध्यान रखा जा रहा है। इसी प्रकार गणित पढ़ाने के लिए जिस शिक्षण सामग्री का इस्तेमाल होता है वह सभी विदेशी मूल की है और उनकी क्षेत्रीय संरचना पर कोई ध्यान नहीं दिया गया है। जैसे कि क्यूजिनियर स्ट्रिप्स (Cuisinaire Strips), नेपियर स्ट्रिप्स (Napier Strips), भिन्न प्लेट (Fraction Disc), डोमिनोज़ (Dominos)। इस तरह की अन्य सामग्रियों का इस्तेमाल भी प्रशिक्षण के दौरान होता है। यह पूछने

पर कि ये क्यूजिनियर आदि क्या है? प्रवक्ता इनका इस्तेमाल तो बता सके लेकिन यह किसने बनाया, कहां बना और किस सिद्धान्त पर बना, जैसे प्रश्नों का उनके पास कोई उत्तर नहीं था।

इन्ही वजहों से प्रशिक्षण की विषय वस्तु और सामग्री ऊपर से थोपी गई लगती थी जिससे प्रशिक्षक स्वयं संतुष्ट नहीं थे। उनके अनुसार "लखनऊ से जो प्रशिक्षण कार्यक्रम बनाकर भेजा जाता है उसका क्रियान्वयन स्थानीय समस्याओं को देखते हुए अति कठिन है"। उनके अनुसार प्रशिक्षण में बार–बार दोहराई जा रही खेल पद्धति सिर्फ पहली–दूसरी कक्षा तक ही संभव है इसके बाद उन्हें वही पुराने ढ़र्रे पर आना पड़ेगा।

इसी दौरान प्रशिक्षण के एक सत्र में भाग लेने का अवसर भी मिला। उस सत्र में कुछ पट्टियों (cuisinaire strips) की सहायता से गुणा करना सिखाया जा रहा था जिसमें पट्टी रखने पर कुछ संख्याओं के गुणा का हल मिल सकता था लेकिन वो हल कैसे और क्यों आ जा रहा था ये पता नहीं चल पा रहा था और न ही उससे बच्चे किसी तरह भी गुणा करना सीख सकते थे, क्योंकि न तो वे रोजमर्रा की जिन्दगी में पट्टियां लेकर घूम सकते हैं और न ही गुणा करने की पद्धति सीख सकते थे। यह दृश्य अत्यंत कष्टदायक था। इस पर सवाल पूछा तो प्रशिक्षक का उत्तर था कि "आप सही कह रही हैं, इन पट्टियों की सहायता से बच्चा हल तो जरूर निकाल सकता है लेकिन पद्धति और कारण नहीं जान सकता।" और साथ ही वह पद्धति काफी भ्रामक भी थी। इस विषय में प्रश्न करने पर जवाब मिला "यह ठीक है कि पद्धति कठिन है और इसलिए जब बच्चे यह कठिन काम न कर पाये तो उनसे कहें कि देखा अगर तुमने पहाड़ा सीख लिया होता तो यह गुणा आसान हो गया होता"।

सत्र समाप्त होने पर प्रशिक्षक से जब बातचीत हुई तो उन्होंने बिना हिचक यह स्वीकार किया कि क्योंकि यह सब ऊपर से आता है और उन्हें निर्देश दिया गया है इसलिए कर रहे हैं वरना यह सब विदेशी प्रचार है और अपने क्षेत्र में इसकी कोई सार्थकता नहीं है।

प्रशिक्षण पद्धति

भागीदारी, सहभागिता आदि सभी तरह के शब्दों का प्रयोग होने के बावजूद हकीकत कुछ और ही तस्वीर दिखाती थी। पहला तो प्रशिक्षण संस्थानों में अनुभवी और कुशल प्रशिक्षकों की कमी अत्यधिक महसूस की गई, जिसके बहुत से कारणों में एक कारण यह भी है कि डाइट अथवा बी. आर.सी. में बाहर से डेपुटेशन पर प्रशिक्षक नहीं आ सकते। दूसरा सभी प्रशिक्षण स्थलों पर उसके अनुरूप ढांचा नहीं बनाया गया है। डाइट के प्रशिक्षण हाल में एक बड़ा सा कमरा है और सामने एक ऊंचा स्टेज बना हुआ है जिसकी वजह से प्रतिभागियों के सामने कोई दीवार नहीं जिस पर चार्ट लगाये जा सकें जबकि प्रशिक्षण हाल में स्टेज होने का औचित्य समझ में नहीं आया। बिल्कुल इसी तर्ज पर बी.आर.सी. के हाल में भी ऊंचा स्टेज बना हुआ था और प्रशिक्षक उस स्टेज के ऊपर कुर्सी डाल कर बैठे हुए थे, प्रशिक्षणार्थी नीचे जमीन पर दरी डाल कर बैठे थे।

प्रशिक्षण में सहभागिता अथवा खुलेपन का कोई वातावरण नहीं दिख पड़ता था। गणित का एक अभ्यास समझाने के बाद जब एक शिक्षिका ने दुबारा समझाने का अनुरोध किया तो प्रशिक्षक ने उन्हें स्टेज पर बुलाकर कहा "आपको नहीं समझ आया तो अब आप ही करके बताइये" (बिल्कुल विद्यालयी शिक्षण की तर्ज पर) और जब वह शिक्षिका नहीं कर पाई तो कहा "आप जाकर बैठ जाइये और

आगे से ध्यान से सुनना; आप में से कौन यहां आकर इस अभ्यास को करके दिखाएगा''। आगे की प्रशिक्षण प्रक्रिया भी कुछ इसी तरह से चली। इसी प्रकार एन.पी.आर.सी. में हुई बैठकों से शिक्षक काफी परेशान और किसी हद तक आतंकित नजर आये। यह पूछने पर कि इन बैठकों तथा प्रशिक्षणों से क्या फायदा होता है, लगभग सभी अध्यापक चुप थे फिर कुछ ने उसके उपयोग बताये। परन्तु जब बातों का सिलसिला चल निकला तो सभी ने स्वीकार किया कि इन सब चीजों का हमें कोई खास फायदा नहीं है। यह सब सरकारी हैं, हम भी सरकार की नौकरी करते हैं, तो जो कुछ मिलेगा वो लेगें।

अम्बेडकर नगर – जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम

विद्यालय भवन

इस अध्ययन के दौरान आम जनता, पंचायत, अभिभावक, शिक्षक और छात्रों से बातचीत करने पर जोर दिया गया, क्योंकि सरकारी तंत्र और ढ़ाचे को पहले अध्ययन में काफी हद तक समझा जा चुका था। लगभग पांच दिन चले इस अध्ययन से जो निकल कर आया उससे प्राथमिक शिक्षा और उसकी खस्ता हालत की गहराई समझने का अच्छा मौका मिला।

इस अध्ययन के दौरान विद्यालय के लिए बनने वाले भवन, समस्या का हल न होकर झगड़े और असंतोष की जड़ के रूप में सामने आये। जो पहला गांव देखा गया वहां तीन साल पहले ही भवन बना था। गांव के ग्राम सभा सदस्य से जब बातचीत हुई तो वे इसे लेकर काफी गुस्से में थे। गांव वाले भी उनका समर्थन कर रहे थे। कारण था, विद्यालय का भवन। सदस्य के अनुसार "सरकार ने पैसा दिया था स्कूल की बिल्डिंग बनाने के लिए, और उसके नाम पर जो दड़बा बना है वो साहब खुद ही चल कर देख लें"। ऐसा इसलिए, क्योंकि भवन एक निचली जगह पर बना है और विद्यालय का प्रांगण भी ऊबड़–खाबड़ है। विद्यालय बनाने का ठेका एक मास्टर (जो कि अन्य ग्राम सभा के हैं) और प्रधान ने लिया था, उन्होंने वहां पर भवन तो बनवाया लेकिन प्रांगण वाली जगह पर भरवाई करवाके उसे समतल नहीं करवाया। इस वजह से छात्रों का विद्यालय में बैठना दूभर है। विद्यालय में सिर्फ दो ही कमरे हैं सभी

बच्चे कमरों के अन्दर नहीं बैठ सकते और बाहर बैठने की कोई जगह नहीं है। "विद्यालय की पांच कक्षाओं में कुल 125 छात्र हैं जिनके लिए कुल मिला कर एक शिक्षक"। यह पूछने पर कि आपने यह शिकायत निरीक्षण अधिकारी से क्यों नहीं की? उत्तर था – "कौन निरीक्षण अधिकारी ! हम किसी को नहीं जानते हैं। यहां जब से यह स्कूल बना है आज तक कोई नहीं आया।" बाद में बातचीत करने पर पता चला कि सच में विद्यालय का आज तक कोई निरीक्षण नहीं हुआ है और न ही कभी एस.डी.आई. आये हैं। फिर तो यह शिकायत प्रधान के पास जानी चाहिए थी, यह कहने पर वहां के सदस्य काफी उत्तेजित हो गये और बोले "प्रधान तो खुद बहुत भ्रष्ट आदमी है। उनकी और मास्टर की मिली भगत से यह सब हुआ है।" स्कूल का ठेका भी नहीं उठवाया गया था। मास्टर और प्रधान ने मिलकर इसका निर्माण करवाया था।

सदस्य द्वारा बताई गई बातों का गांव वालों ने भी समर्थन किया। इसके बाद ग्रामसभा सदस्य ने बताया कि प्रधान तो एक हरिजन महिला है लेकिन वो तो सिर्फ नाम की है उनकी जगह पहले उनके देवर प्रधानी करते थे लेकिन जब सभी ग्रामसभा सदस्यों को उनसे बहुत ज्यादा परेशानी होने लगी तो प्रधान के खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव लाया गया। इस पर प्रधान द्वारा माफी मांगने पर उनकी प्रधानी रहने दी गई और अब प्रधान के पति प्रधानी कर रहे हैं। लेकिन ये सदस्य प्रधान के पति की प्रधानी से भी नाखुश नजर आये।

जब यह सब बातें प्रधान के पति से पूछी गईं (क्योंकि प्रधान को किसी भी तरह की कोई जानकारी नहीं थी और न ही उन्हें यह पता था कि विद्यालय के लिए कुल कितना धन आया था) तो उन्होंने इसकी पूरी जिम्मेदारी से हाथ धोते हुए कहा कि "मुझे इन सबसे कोई लेना देना नहीं है हम तो बस साइन करके पैसा निकालने के लिए थे, बाकी सारे काम तो मास्टर जी ही करते थे"। इसी तरह उन्होंने विद्यालय पर कुल खर्च हुई राशि तथा विभिन्न मदों पर खर्च के बारे में अनभिज्ञता प्रकट की। प्रधान के पति के अनुसार सरकार

को हिसाब भी अध्यापक ने ही दिया था। पूरी मिली जानकारी के आधार पर यह कहा जा सकता है कि विद्यालय भवन और उसको बनाने की प्रक्रिया में सदस्य प्रधान पर, और प्रधान अध्यापकों पर दोषारोपण कर रहे थे। जबकि अध्यापक कहते हैं कि सब कुछ प्रधान की देख–रेख और सलाह से होता है।

इसी तरह दूसरे विद्यालयों में जाने पर भी भवनों के बारे में कई तरह की शिकायतें सुनने को मिलीं। उदाहरण के लिए उदयपुर गांव में बना प्राथमिक विद्यालय जहां सिर्फ दो कमरे और एक स्टोर के लिए पैसा दिया गया। इसके अलावा हैण्ड पम्प तक प्रधान ने वहां बच्चों की असुविधा (विद्यालय गांव से थोड़ी दूरी पर है) को देखते हुए ग्राम सभा की राशि से लगवा दिया। लेकिन फिर भी खेतों में बना यह विद्यालय बिना चहारदिवारी के अत्यन्त असुविधाजनक है और वहां पढ़ने–पढ़ाने का वातावरण कभी बन पाता होगा, यह कह पाना कठिन है।

शिक्षक एवं शिक्षा

इस अध्ययन के दौरान पूरी शिक्षा नीति और उसमें आ रहे सभी तरह के बदलावों पर शिक्षकों का असन्तोष खुलकर सामने आया। सभी अध्यापकों ने एकमत यह स्वीकार किया कि शिक्षा और उसकी गुणवत्ता दिनों–दिन गिरती जा रही है और यह पूरी तरह से अव्यवस्था तथा भ्रष्टाचार की शिकार है। यहां किसी की कोई सुनवाई नहीं हैं। अध्यापकों के अनुसार ''यहां सब अपनी–अपनी गोटी फिट करने में लगे हैं''।

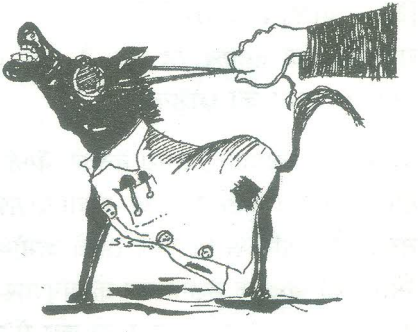

सभी अध्यापकों ने उनको दी जा रही सेवा सुविधाओं पर असंतोष जाहिर किया

कि उन्हें समुचित अवसर और प्रोत्साहन नहीं मिलते हैं। उनके अनुसार ''हम लोगों ने आज से 30–35 साल पहले प्राथमिक कक्षाओं में पढ़ाना शुरू किया था और आज तक वहीं अटके हुए हैं बताइये कैसे रूचि रहेगी पढ़ाने में''। सभी अध्यापक थके और निराश प्रतीत होते थे। अध्यापकों से चर्चा के दौरान होने वाली बातचीत चाहे जहां से शुरू हो, उन पर थोपे जा रहे अन्य कार्यों के बोझ पर आकर ही खत्म होती थी। सभी अध्यापकों ने इस बात के लिए खुले तौर पर प्रशासन और नीतियों की निंदा करते हुए कहा कि ''अध्यापक तो सरकारी गधा बनकर रह गया है, चाहे जैसा उससे काम ले लो, सिर्फ अध्यापन को छोड़कर''।

शिक्षकों की स्थिति : एक झलक

यदि शिक्षक और उनकी स्थिति को पहले देख लें तो अन्य बहुत सी बातें स्वयं स्पष्ट हो जाएगी।

अध्यापक	:	जमाल अहमद खान
अध्यापन आरम्भ	:	1963 अप्रशिक्षित 1968 बी.टी.सी. 1969 प्रशिक्षित अध्यापक के रूप में भर्ती
सेवा निवृति	:	अप्रेल, 2000
पद प्रमोशन	:	एक भी नहीं 1981 में सेलेक्शन ग्रेड में एक वेतनमान का इजाफा।
अध्यापक	:	रामबहादुर वर्मा
अध्यापन आरम्भ	:	1972
सेवा निवृति	:	2005
पद प्रमोशन	:	कोई नहीं 10 साल पहले सेलेक्शन ग्रेड
अध्यापक	:	चन्द्र प्रकाश मिश्र
अध्यापन आरम्भ	:	1968 प्राइमरी शिक्षक
सेवा निवृति	:	2001 में हेडमास्टर रेंक से
पद प्रमोशन	:	16 साल बाद सेलेक्शन ग्रेड

शिक्षकों का ज्यादातर समय बैठकों, बैंकों के चक्कर और दफ्तर के दौरों में व्यतीत होता है। बचा–खुचा प्रशिक्षण में चला जाता है। इन सबके बीच यदि समय मिले तो वे कभी–कभी स्कूल भी आते हैं। 'भितरी डी' के एक हेडमास्टर के अनुसार (जो कि एक विद्यालय में चार साल से एकल अध्यापक के रूप में पढ़ा भी रहे हैं) ''1986 के

बाद से हमने किताबों के पेज नहीं उलटे हैं अब हम सिर्फ रजिस्टरों के पेज पलटते हैं। कभी छात्रवृत्ति, कभी राशन, कभी जनगणना और भी जितने कामों का ऊपर से आदेश हो। महीने में मुश्किल से दस दिन मिलते हैं पढ़ाने के लिए और वह भी एक ही अध्यापक होने की वजह से बताइये बच्चों को घेरें, कि पढ़ायें।"

एक वरिष्ठ अध्यापक ने भावुक होते हुए कहा "हमें खुद शर्म आती है अब खुद को अध्यापक कहते हुए। पढ़ाई के नाम पर कुछ नहीं होता। जब बच्चों के मां–बाप शिकायत लेकर आते हैं कि हमारे बच्चे ने पांचवी पास कर ली इसे लिखना तक नहीं आता तो कुछ कहते नहीं बनता"। और फिर गुस्से में बोले कि "खुद ही देख लीजिए पिछले तीन दिन से लगे हैं पोलियो के ड्राप पिलाने में और यह हर दूसरे महीने होता है। इस बीच सब स्कूल बन्द हैं और हम लोग पोलियो ड्राप पिलाते घूम रहे हैं"। दौरे के समय पोलियो अभियान के तहत वहां पोलियो ड्राप्स पिलाई जा रही थी जिसमें सभी अध्यापकों की ड्यूटी लगी थी। यह सब सच भी प्रतीत होता है। वहां के अध्यापकों के अनुसार महीने के लगभग 18 दिन बैठकों में जाते हैं, कुछ दिन बैंक में छात्रवृत्ति पता लगाने और निकलवाने में, फिर कुछ दफ्तर के चक्कर काटने और फिर बचे हुए दिन ही विद्यालय में दिये जा सकते हैं।

शिक्षा का पाठ्यक्रम

विषय वस्तु तथा उसमें आये बदलावों के बारे में पूछने पर उत्तर मिला, हॉ कुछ बदला तो है। कुछ के थोड़े पाठ बदले हैं कुछ के सिर्फ कवर। इसके अलावा ज्यादा विस्तार में बात करने पर फिर वही गुस्सा कि पढ़ाने का वक्त किसके पास है जो कि पता हो कि कहां क्या बदला है। लेकिन धीरे–धीरे और ज्यादा जोर देने पर अध्यापकों ने पिछले अध्ययन की तरह ही बदले हुए

गणित के पाठ्यक्रम के बारे में अपनी राय जाहिर करते हुए कहा कि यह बिल्कुल बेकार है और छात्रों की समझ से ऊपर है। एक पास खड़े अभिभावक के अनुसार "चौथी कक्षा में डाली हुई वो लंगड़ी भिन्न तो बहुत ही मुश्किल है"। इसी प्रकार अध्यापकों का भी यह मानना था कि बदला हुआ पाठ्यक्रम बच्चों की बुद्धि और उनकी समझने की क्षमता को ध्यान में रखते हुए नहीं बनाया गया है। दूसरा उदाहरण दिया गया भूगोल का। अध्यापकों के अनुसार पहले भूगोल जिला स्तर का होता था लेकिन अब पांचवी में ही विश्व स्तर का भूगोल आ गया है। इस उम्र के बच्चे इतनी ऊंची पढ़ाई कैसे समझेंगे। अर्थात पाठ्यक्रम सरल और सुग्राह्य होने के बजाय कठिन होता जा रहा है। इसी प्रकार दूसरे विषयों के बारे में पूछने पर पता लगा कि और सब में तो कोई खास परिवर्तन नहीं आया है। सिर्फ कुछ किताबों के कवर बदल गये हैं लेकिन उनका औचित्य समझ में नहीं आता।

कुछ अध्याापकों का मानना था कि पाठ्यक्रम में से खेल–कूद इत्यादि के अवसर खत्म कर दिये गये हैं और ये सब अब सिर्फ शहरी क्षेत्रों के लिए कर दिया गया है। कुछ अध्यापक इस बात से खफा थे कि जब राय माननी ही नहीं थी तो सर्वे क्यों किया गया। (डी.पी.ई.पी. का एक्शन प्लान बनाने के लिए विद्यालय और अध्यापकों का सर्वे किया गया था) अध्यापको के अनुसार पाठ्यक्रम पहले से कहीं अधिक कठिन और उलझा हुआ है। एक शिक्षक के कथनानुसार "जब हम एक सेर नहीं उठा सकते हैं तो दो सेर कैसे उठायेंगे"। सभी अध्यापकों ने राय जाहिर की, कि यदि पाठ्यक्रम बच्चों की समझ और बुद्धि क्षमता के अनुसार होगा तो वे जल्दी और अच्छी तरह से सीख सकेंगे।

शिक्षण पद्धति

अम्बेडकर नगर में किए गए अध्ययन के दौरान शिक्षण पद्धति के बारे में कई नई चीजें निकल कर सामने आईं। शिक्षण पद्धति में परिवर्तन और अध्यापकों का छात्रों के प्रति मित्रतापूर्ण व्यवहार, उनके प्रति संवेदनशीलता इत्यादि जैसे शब्द काल्पनिक ही नहीं

उससे भी परे लगे। पांच दिन लगातार शिक्षक अभिभावकों द्वारा बच्चों की पिटाई के बदले शिक्षकों से शिकायत करते रहे और एक अध्यापक ने तो यहां तक कहा कि "क्या पढ़ाई होगी इन स्कूलों में जरा सा किसी बच्चे को हाथ लगा दो तो मां–बाप चले आते हैं शिकायत लेकर। हमने तो पढ़ाना ही बन्द कर दिया है"। (अर्थात मारना कम कर दिया है)। एक अध्यापक ने कहानी सुनाते हुए कहा कि कुछ ही दिन पहले एक अध्यापक ने बच्चे को मारा, बाद में उसके अभिभावकों ने उस अध्यापक को घेर लिया। अध्ययनकर्ता द्वारा यह पूछने पर कि "क्या उन्हें किसी ने मारा" तो कहानी सुनाने वाले अध्यापक टालते हुए बोले – नहीं कहा तो कुछ नहीं। इस पर साथ बैठे अध्यापक बुदबुदाये –सम्मान को ठेस तो पहुंचती ही है।

भीतरी डी में एक महिला से बातचीत करने पर पता चला कि उसकी पांच साल की बच्ची को पहले दिन ही अध्यापक ने इतना मारा कि वह स्कूल से भाग आई और स्कूल जाने के नाम पर ही रोने लगती है। अध्यापक के प्रति उसके मन में इतना डर बैठ गया है कि जब कभी वे उसे बहला–फुसला कर स्कूल ले भी गई तो उस शिक्षक को देखकर ही वह वहां से भाग खड़ी होती है।

जिस तरह सभी अध्यापक इस बात से सहमत थे कि उनके साथ अन्याय हो रहा है उसी तरह इस पर भी सहमत थे कि बच्चों को मारे बिना पढ़ाया नहीं जा सकता। उनके अनुसार शिक्षा में गिरावट का एक कारण यह भी है कि आजकल अभिभावक शिक्षकों द्वारा बच्चों को दण्डित करने पर शिकायत करते हैं जिसकी वजह से अध्यापकों का मन भी बच्चों को पढ़ाने में नहीं लगता। साथ ही उन्होंने यह निष्कर्ष भी निकाला कि यदि बच्चों को ठीक से पढ़ाना है तो

अभिभावकों को उनकी पिटाई पर कोई शिकायत या एतराज नहीं करना चाहिए।

दण्डात्मक पद्धति ही पूरे क्षेत्र में सबसे प्रचलित पद्धति है जिसके बिना शिक्षकों के अनुसार पढ़ाना असंभव है। वर्तमान में इसीलिए शिक्षा का स्तर भी गिर रहा है, क्योंकि आजकल अभिभावक शिक्षकों को मनमाने ढंग से छात्रों को मारने नहीं देते। उनके अनुसार पहले के अभिभावक अधिक समझदार होते थे और इस तरह के मामलों में शिक्षकों से कोई शिकायत नहीं करते थे। इसलिए पढ़ाई भी ठीक होती थी। "आजकल तो जरा कुछ बच्चे से कह दो तो चले आते हैं शिकायत करने"। यह जानने के बाद जब पूछा कि इसका मतलब एक–आध झापड़ मार देने से भी अभिभावक शिकायत लेकर आ जाते हैं? अध्यापक कुछ नहीं बोले सिर्फ आपस में बातें करने लगे और दुबारा सवाल दुहराने पर बोले "छोड़िए ये सब तो चलता ही रहता है क्या–क्या सुधारा जाएगा"।

शिक्षक–छात्र संबन्ध

शिक्षक–छात्र संबन्धों के बारे में अब ज्यादा कुछ लिखने के लिए नहीं है, क्योंकि बहुत हद तक शिक्षण पद्धति उसके बारे में बोल चुकी है। लेकिन शिक्षकों का नजरिया इस विषय में वही है जो कि आजकल के ज्यादातर शिक्षक कहते पाये जाते हैं कि "आजकल छात्र, अध्यापकों का मान–सम्मान नहीं करते"। हम लोग अगर बच्चों को मारें तो वे हमें मारने के लिए

> कुढ़ा बडकापुरवा में अध्यापकों द्वारा पढ़ाने के तरीके की बात चल रही थी तो एक सज्जन जो काफी देर से खड़े होकर सभी बातें सुन रहे थे अचानक गुस्से से बोले – "पढ़ावत है, का पढ़ावत है हमार लरिका के मार–मार के झोर देन्हीं और कहत है कि कोई कछु कह न"। बाद में उनसे जब बिठा कर बात की तो उन्होंने बताया कि किसी अध्यापक ने उनके लड़के को इतना मारा कि उसके शरीर पर सूजन आ गई। और जब वे इसकी शिकायत लेकर स्कूल में गये तो अध्यापक ने जवाब दिया कि अगर आपको पिटाई से एतराज है तो आप अपने बच्चे का नाम यहां से कटवा लीजिए।

तैयार हो जाते हैं। ऐसे में किसकी हिम्मत है कि उन्हें अनुशासित कर पढ़ा सके। परन्तु अध्यापक यह जरूर मानते हैं कि समुचित संख्या में अध्यापक न होने की वजह से वे ठीक से पढ़ नहीं पाते। साथ ही उन्हें यह भी लगता है कि ग्रामीण बच्चे पढ़ाई के प्रति उदासीन होते हैं और साथ ही शैतान भी, इसलिए शहरों के मुकाबले यहां के बच्चों को पढ़ाना मुश्किल काम है।

इसके अलावा शिक्षक–छात्र में कैसे संबंध होने चाहिए अथवा हैं इसके उत्तर में कोई खास संभावनाएं नहीं दिखाई पड़ीं। सभी का मानना था कि एक गुरू और शिष्य में वैसा ही रिश्ता हो जैसा कि हमारे इतिहास अथवा धर्म में बताया गया है।

व्यवस्था और माहौल

भीतरी डी, के एक अध्यापक के अनुसार "मैं पिछले चार सालों से ईटों के ठेर पर बैठकर पढ़ाता रहा हूँ। अभी कुछ दिन हुए वहां की दयनीय हालत को देखते हुए प्रधान ने कुछ जुगाड़ करके एक कुर्सी और मेज दिलवा दिया है"। यह शिकायत एक विद्यालय की नहीं, वहां पर देखे हुए लगभग सभी विद्यालयों में कुर्सी तथा मेजों की कमी थी। एक विद्यालय में शिक्षक का कहना था "आप जिस कुर्सी पर बैठी हैं वह भी गांव की है यहां पर न मेज है न कुर्सी। *उसी तर्ज पर एक शिक्षक ने पाठ्यक्रम का जिक्र आने पर बताया कि "यहां एक विषय है 'विज्ञान आओ करके सीखें'। बिना किसी उपकरण के क्या करके सीखें"।* विद्यालयों में जरूरी फर्नीचर से लेकर शिक्षण सामग्री तक सभी चीजों की कमी है और शिक्षा विभाग से

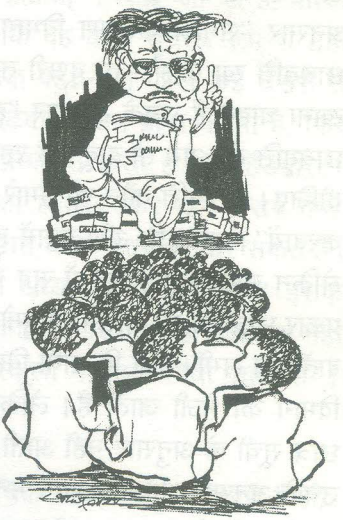

इन सब चीजों के लिए अतिरिक्त राशि भी प्रदान नहीं की जाती है। किसी भी विद्यालय में शिक्षण की पर्याप्त सुविधाएं मौजूद नहीं थीं। दूसरी तरफ सभी शिक्षक मौजूदा नीतियों और अध्यापकों पर बढ़ रहे अन्य बोझों से भी बहुत असंतुष्ट थे। उनके अनुसार आजकल जो पहुंच वाले अध्यापक हैं उन्हें शहरों के आसपास और अधिक अध्यापकों वाले स्कूल में तबादला मिल जाता है जबकि अन्य अध्यापक सुदूर क्षेत्रों में एकल विद्यालयों में पड़े हुए हैं। 'भीतरी डी' के अध्यापक के अनुसार लगभग चार महीने पहले उनके स्कूल में एक शिक्षक आये थे जो कि दस दिन के अन्दर ही अपना तबादला करवा के कहीं और चले गये। इस प्रकार उनकी महीनों की भागदौड़ और प्रधान के प्रयास के बाद एक शिक्षक को भेजा भी गया तो वह वहां आने से पहले ही तबादला करा चुका था और अब वह वैसे ही अकेले स्कूल को चला रहे हैं।

एक मुख्य जिम्मेदारी जो आजकल शिक्षकों के लिए खट्टी और मीठी दोनों हैं वह है स्कूल में बटने वाली छात्रवृत्ति। एक अध्यापक के अनुसार "समाज कल्याण विभाग में 5000 रुपया दो और सारी छात्रवृत्ति खा जाओ" तो दूसरी तरफ जो अध्यापक छात्रवृत्ति नहीं खाना चाहते हैं उनके अनुसार "हम समाज कल्याण के दफ्तर में छात्रवृत्ति लेने गये तो बाबू कह रहा है गुरू जी चाय नाश्ता तो करा दीजिए। छात्रवृत्ति कौन सी हमारे बाप की है जो उन्हें चाय नाश्ता करवायें"। छात्रवृत्ति और उसमें हुए घोटलों की कहानी अनन्त है लेकिन सरकारी आंकड़ों में सब सफलतापूर्वक चल रहा है। इसी प्रकार छात्रवृत्ति की राशि के अनुमोदन को लेकर बहुत ही हास्यास्पद बातें पता लगीं। जैसे कि सभी विद्यालयों में छात्रों की सूची बनाकर विभाग को भेजी जाती हैं। लेकिन छात्रवृत्ति कभी भी भेजी गयी छात्र सूची के अनुसार नहीं आती। या तो कम आएगी या ज्यादा। उनके अनुसार "विभाग अपने मनमाने ढंग से काम करता है और हमारी सूची के अनुसार कभी छात्रवृत्ति नहीं मिलती लेकिन फिर भी हम हर महीने सूची बनाकर विभाग को भेजते हैं।

एक अध्यापक ने बताया कि उनके पास छात्रवृत्ति की राशि लगभग

दुगने से भी अधिक आ गई है। उन्हें आवश्यकता थी सिर्फ 20,000 की आ गया 40,000! समाज कल्याण विभाग के अधिकारी को जब यह बताया गया तो बोले बाकी रकम का ड्राफ्ट बनाकर वापस समाज कल्याण के बैंक खाते में जमा करवा दो। अध्यापक के अनुसार "हमारी कौन सी गरज पड़ी है कि बैंक में पूरा दिन खराब करें। ड्राफ्ट बनवायें फिर शहर जाकर उनके खाते में जमा करवायें। हम एक ही अध्यापक हैं विद्यालय में। यह सब करें कि बच्चों को देखें"। दूसरी तरफ कुछ अध्यापकों का आरोप था कि "हम जितने छात्रों की सूची देते हैं उतनों की छात्रवृत्ति नहीं आती तो मां–बाप आकर हमसे पूछताछ करते हैं और बेकार झगड़ा झंझट होता है। बताइये हम क्या अपनी जेब से छात्रवृत्ति दे दें"। इस तरह की व्यवस्थागत खामियों से शिक्षा तंत्र भरा पड़ा है और जितने कार्यक्रम हैं उतनी ही समस्याएं।

राशन को लेकर भी अध्यापकों में बहुत रोष था, क्योंकि राशन लेने से लेकर राशन बांटने तक की प्रक्रिया न सिर्फ जटिल है, बल्कि इतने अधिकारियों पर निर्भर है कि वह कभी सुचारू रूप से नहीं चल सकती। राशन को बच्चों तक पहुंचने से पहले कई चरणों से गुजरना पड़ता है। ब्लाक से कोटेदार राशन प्राप्त करता है, फिर लेखाधिकारी उसकी प्राप्ति को प्रमाणित करते हैं फिर हैडमास्टर की उपस्थिति में उसे बांटा जाता है और फिर यदि उसमें कोई खामी हो तो प्रधान उसकी शिकायत ब्लाक स्तर पर कर सकते हैं। इस पूरी प्रक्रिया के बारे में भी अध्यापक परेशान लगे। इसके अलावा उनके अनुसार "जो गेहूं कहीं भी इस्तेमाल होने लायक नहीं होता उसे ही राशन के रूप में स्कूलों में बंटवा दिया जाता है"।

परीक्षा पद्धति

परीक्षाओं के बारे में कुछ और रूचिकर तथ्यों की जानकारी मिली। उदाहरण के लिए छात्रों ने बताया कि 7 रुपये प्रति छात्र उनसे परीक्षा शुल्क लिया जाता है। लेकिन इसके बदले उन्हें कुछ भी नहीं मिलता। जब यह प्रश्न अध्यापक के सामने रखा गया, तो उन्होंने कहा कि "इसमें कार्यालय अथवा अध्यापक किसी की भी गलती

हो सकती है, क्योंकि ब्लाक कार्यालय में तो पर्चे छप जाते हैं अध्यापक अगर ले आये तो बांटने में क्या हर्ज? लेकिन कुछ भी कहना मुश्किल है''।

एक महत्वपूर्ण विषय जिस पर अध्यापकों को निराशा है वह है शासन का आदेश कि किसी भी बच्चे को फेल न किया जाय। उनके अनुसार परीक्षाओं का क्या फायदा है यदि मूल्यांकन होना ही नहीं। जिन्हें कुछ भी नहीं आता उन्हें भी पास करना ही पड़ेगा। ''इसलिए हम लोग तो लकीर पीट रहे हैं''। विस्तृत चर्चा करने पर पता लगा कि उत्तर प्रदेश सरकार की प्राथमिक शिक्षा नीति के अनुसार प्राथमिक कक्षाओं के बच्चों को फेल नहीं किया जा सकता, जिसके फलस्वरूप सभी परीक्षा परिणाम शत–प्रतिशत आ रहे हैं। इस पद्धति के तहत अब किस तरह से शिक्षा की गुणवत्ता को मापा जा रहा है, क्योंकि सभी शिक्षा कर्मियों और अधिकारियों के अनुसार परीक्षा परिणाम और उसमें आये अकं प्रतिशत ही उसकी गुणवत्ता के सूचक हैं।

शिक्षक प्रशिक्षण

सभी अध्यापक प्रशिक्षण को एक अनुपयोगी या समय नष्ट करने का तरीका मानते हैं। उनके अनुसार ''प्रशिक्षण तो एक टाइम पास है लेकिन हम जैसे लोगों के लिए एक सज़ा''। इसका तात्पर्य यह है कि वे अध्यापक जो कि एकल विद्यालय चला रहे हैं और जिनका 70 प्रतिशत समय इधर–उधर के कार्यों में चला जाता है बाकी बचे समय में पढ़ाने का काम भी हो जाया करता था लेकिन अब ये समय भी प्रशिक्षण की भेंट चढ़ जायेगा।

यह पूछने पर कि बिना प्रशिक्षण लिए बदलते हुए पाठ्यक्रय इत्यादि को आप कैसे समझेगें तो उत्तर मिला कि "हम लोग पिछले 30–35 सालों से पढ़ा रहे हैं, गणित के एक दो सवाल बदल कर उन्हें समझाने के लिए हमें प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं"। आवश्यकता है विद्यालयों में अध्यापकों की। कुछ अध्यापक जो हैडमास्टर अथवा स्कूलों के प्रभारी थे और उन्हें मास्टर ट्रेनर के प्रशिक्षण हेतु बुलावा आया था वे इसके प्रति काफी झुंझलाये हुए थे और यह बुलावा अध्यापकों को भविष्य में उन पर गिरने वाली गाज से कम नहीं लग रहा था। वे सभी इस अचानक आई मांग से चिन्तित थे और पूछ रहे थे कि हमारे मास्टर ट्रेनर बन जाने से क्या होगा? जो कुछ जैसा है सब वैसा ही रहेगा तमाशा चाहे जितना कर लें। किसी भी अध्यापक को स्पष्ट रूप से पता नहीं था कि प्रशिक्षण क्यों और किन उद्देश्यों को लेकर आयोजित किये जाएगें। यह पूछने पर कि आपको पता है इन प्रशिक्षणों में क्या होगा? उन्होने बताया कि "अभी तो ठीक से पता नहीं, वहीं जाकर पता चलेगा"। फिर बोले "वो क्या बताएगें, वो ही सब जो हम जानते हैं, वो कान ऐसे न पकड़ कर वैसे पकड़ेगें"।

इसी तरह अन्य शिक्षक भी प्रशिक्षण के प्रति आशावादी नहीं थे और न ही उससे कोई भविष्य में सुधार की संभावना देख रहे थे। इसी क्रम में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि यह रही कि जब इस क्षेत्र में अध्यापकों को यह पता चला कि यहां पर शिक्षा और उससे जुड़े मुद्दों पर दिल्ली से कोई अध्ययन करने आई हैं तो 4–5 शिक्षकों ने मिलकर सुझावों की एक सूची दी जो कि उनके द्वारा झेली जा रही परेशानियों और उनके समाधान का एक आइना प्रस्तुत करती है।

1. विद्यालायों का जो नक्शा बनाया गया है वह बिल्कुल बेकार है। जब स्कूलों में पांच कक्षाएं लगती हैं तो सिर्फ दो ही कमरे क्यों बनाये जाते हैं। हमारा सुझाव है कि सभी विद्यालय भवनों में पांच कमरों का प्रावधान हो।

2. एक स्वतंत्र व्यक्ति जैसे कि गांव का प्रधान और एक सरकारी वेतन भोगी जैसे कि अध्यापक को कुछ सम्मिलित

कार्य सौप दिये गये हैं। इसकी वजह से प्रधान पर तो सरकार का कोई जोर चलता नहीं और हर छोटी–छोटी बात में बिचारे अध्यापक को अधिकारीगण घेर लेते हैं। इस व्यवस्था को समाप्त किया जाना चाहिए।

3. विद्यालय भवन बन जाने के बाद उसमें मेज कुर्सी आदि के लिए कोई प्रावधान नहीं है और न ही किसी शिक्षण साम्रगी के लिए। सरकार इसके लिए समुचित व्यवस्था करे।

4. विद्यालायों में शौचालयों और चारदिवारी (जिले के बेसिक शिक्षा अधिकारी के अनुसार डी.पी.इ.पी. में बाउण्ड्री वाल के लिए कोई प्रावधान नहीं है और इसलिए उन्हें नहीं बनाया जा सकता) के लिए कोई प्रावधान नहीं। इसे यथाशीघ्र लाया जाये।

5. हर विद्यालय में कम से कम पांच अध्यापक अवश्य हों जिससे कि वह छात्रों को व्यवस्थित कर सकें और शिक्षण प्रक्रिया ठीक से चल सके।

6. शिक्षकों को अध्यापन के अलावा अन्य कार्यों के लिए भी उपयोग किया जाता है जैसे छात्रवृत्ति, राशन, पोलियो, टीकाकरण, जनगणना, बालगणना, विकलांग गणना आदि। इन सबकी वजह से शिक्षण कार्य प्रभावित होता है। खासकर उन विद्यालयों में जहां सिर्फ एक ही अध्यापक है। एकल विघालय के अध्यापक बच्चों को किस की जिम्मेदारी पर छोड़कर जाये। अतः इस तरह के सभी कामों से अध्यापकों को मुक्त किया जाए।

अभिभावक और स्कूली शिक्षा

शिक्षा और खासकर अध्यापकों की नियमितता को लेकर अभिभावकों में काफी रोष देखने को मिला। इससे भी अधिक उन्हें सरकार से शिकायत थी कि सरकार ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा पर समुचित ध्यान नहीं दे रही है। एक ग्रामीण के अनुसार "सरकार को क्या जरूरत

है कि गांवों के बारे में भी सोचे उनके *बच्चे तो बड़े–बड़े अग्रेंजी स्कूलों में पढ़ने जाते हैं''*। पूरे भ्रमण के दौरान 150 – 200 अभिभावकों के साथ बातचीत हुई और सभी ने उनके गांव के या पास वाले गांव

के विद्यालय (जहां कहीं भी उनके बच्चे पढ़ने जाते हैं) में मास्टरों की संख्या को लेकर शिकायतें कीं। उनके अनुसार अध्यापक भी क्या करें, एक मास्टर, 300 बच्चे, कैसे सम्भाले। ज्यादातर लोग इस बात पर सहमत थे कि अध्यापकों की कम संख्या ही मुख्य रूप से स्कूलों और शिक्षा की खस्ता हालत के लिए जिम्मेदार है।

शुरूआत में जब बात चलती तो अभिभावक अध्यापक के प्रति सहानुभुति जताते हुए कहते कि ''बेचारा क्या करे अकेला है, कैसे इतने बच्चों का ध्यान रखे''। फिर जब बातें चल निकलतीं तो धीरे–धीरे अध्यापकों की शिकायतों का पिटारा खुलना आरम्भ हो जाता। अभिभावक अध्यापक की लेट–लतीफी और उनके आलस्य को लेकर किस्से और घटनाएं बताना शुरू करते और अन्त तक निष्कर्ष यह निकलता कि या तो अध्यापक बैठक में चले जाते हैं नहीं तो अन्य काम में पड़ जाते हैं और यदि विद्यालय आना होता है तो 11–12 बजे तक टहलते हुए चले आते हैं। इस पर एक मसखरे ने जुमला उछाला ''सबको अपनी–अपनी चिन्ता होती है मास्टर जी की खेती बाड़ी का काम क्या तुम लोग करोगे। बेचारे अपना काम धन्धा निपटाकर आ तो जाते है।

सिर्फ एक दो विद्यालयों में ऐसे अध्यापक हैं जो कि नियमित रूप से और वक्त पर स्कूल पहुंच जाते हैं। इसके अलावा लगभग सभी

जगह अभिभावकों ने उनके आलस्य और पढ़ाने में कोई रूचि न लेने की शिकायत की। एक अभिभावक से जब यह पूछा गया कि वे आपके बच्चों को क्या पढ़ाते हैं जवाब था – "का पढ़ावत है? 11–12 बजे टहलत भये आय जात है और फिर एक दुई लरिकन के मारन पीटन, कुछ कै डांटी डपटी और बच्चन खुद ही कुछ रटै लागी तो वे जाइके छांव में सुस्तान लागिहें"। इसी तरह की बातें और वक्तव्य हर दूसरे–तीसरे अभिभावक से सुने जा सकते थे। कुछ लोग तो अध्यापक और शिक्षा संबंधी बातें करने पर बहुत ही उत्तेजित हो जाते थे, और सरकार को शिक्षा की बदहाल स्थिति के लिए आड़े हाथों लेते थे। ग्रामीणों के अनुसार "सरकार को क्या पड़ी है हम गरीबों के बच्चों के लिए कुछ करने की। शहरों में वहां अमीरों के लिए सब सुविधाएं हैं और हमारे लिए कुछ नहीं।

इसी तरह बहुत से अध्यापकों ने शिक्षकों द्वारा की जा रही ज्यादतियों की भी खुलकर आलोचना की। बहुत से अभिभावकों ने बताया कि शिक्षक छात्रों को बिना कारण मारते–पीटते हैं जिससे कि बच्चे स्कूल नहीं जाना चाहते। एक विरोधाभास देखने को यह मिला कि सभी अभिभावकों ने एक सुर में कहा कि हमें कोई एतराज नहीं अगर अध्यापक बच्चों को अनुशासित करें। यहां तक कि कुछ अभिभावकों ने यह शिकायत की कि "यह गुरूजी तो बस ऐसे ही हैं, किसी बच्चे को न मारे न कड़ाई करें। तो बच्चे कैसे संभलेगें"। जबकि वहीं के अध्यापक का वक्तव्य था कि "हमने तो बच्चों को मारना (पढ़ाना) ही छोड़ दिया है जबसे मां–बाप उनकी शिकायत लेकर आने लगे हैं"। जब यह बात सामने रखी गई तो एक महिला (मां) बहुत गुस्से में बोली कि "कहत है शिकायत लेकर आवत है हमारी बिटिया के इतना मारिन है कि नीले–नीले बत उभर आइन हैं अब अइसे में कहिन न तो का करिन"।

अभिभावकों ने दबी जुबान से अध्यापकों के भ्रष्ट होने की बात भी जाहिर की और बताया कि स्कूलों में जितना भी पैसा आता है वो ये सब खा जाते हैं। ये सब भी अधिकारियों की तरह ही भ्रष्ट हैं। लेकिन फिर भी ग्रामीणों के अनुसार कुछ न होने से तो कुछ होना

अच्छा है। ये अध्यापक उनसे तो अच्छे हैं जो यहां आना ही नहीं चाहते और अगर आ भी जायें तो दस दिन में ही तबादला करा लेते हैं। इस समझौतावादी नज़रिये के अलावा उनके पास शायद और कोई विकल्प भी नहीं। क्योंकि वर्तमान स्थिति में कम से कम उनके बच्चे विद्यालय नामक जगह जानते तो हैं? लिख नहीं पाएंगे तो भी अंगूठा तो न लगाएगें। पढ़ नहीं पाएंगे तो भी निरक्षर तो न कहलायेंगे।

कुछ गांव ऐसे भी मिले जहां पहले परिस्थितियां अच्छी थीं और आजकल बदतर। गांव वालों ने बताया कि "पहले उनके स्कूलों में पांच अध्यापक हुआ करते थे और पढ़ाई भी बहुत अच्छी होती थी। लेकिन पिछले चार–पांच सालों में पता नहीं ऐसा क्या हुआ कि अध्यापक बढ़ने के बजाय घटते जा रहे हैं और अब जिस विद्यालय में पांच अध्यापक हुआ करते थे एक ही अध्यापक के दम पर शिक्षा कार्य चल रहा है। कारण पूछने पर पता चला कि सरकार आस–पास के गांवों में नये विद्यालय बना रही है और उनमें शिक्षक बाहर से तो आते नहीं, इसलिए अतिरिक्त शिक्षकों के अभाव में वर्तमान विद्यालयों से शिक्षक नये विद्यालयों में भेज दिये जाते हैं। अर्थात जहां एक तरफ शिक्षा की गुणवत्ता और अध्यापकों की कमी पूरी करने के लिए विभिन्न प्रयास किए जा रहे हैं और विदेशी कर्ज से गंगा नहाई जा रही है वहीं दूसरी तरफ जो कुछ अच्छा चल भी रहा था, उसे रूग्णता तक की स्थिति में पहुंचाया जा रहा है।

विद्यालयों में दिन पर दिन घट रही अध्यापकों की संख्या अत्यन्त चिन्ताजनक है, क्योंकि शिक्षा के क्षेत्र में हो रहे सभी प्रयास और चल रहे कार्यक्रम नगण्य हैं यदि अध्यापक ही समुचित संख्या में उपलब्ध न हो सकें। चाहे डाइट कितने ही प्रशिक्षण देकर एक अध्यापक को पांच–पांच कक्षाएं सम्भालने की क्षमता वृद्धि का नाटक करे यथार्थ में यह संभव नहीं। अतः यह सरलीकरण का जो सिद्धान्त आजकल शिक्षा की सर्व–सुलभता के लिए अपनाया जा रहा है वह कितना कारगर है सिर्फ उन अभिभावकों की चिन्ता और रोष से ही समझा जा सकता है जिनके बच्चे विद्यालय में सिर्फ नाम लिखवाकर ही उत्तीर्ण हो जाते हैं।

जहां अभिभावक नये स्कूल खुलने से प्रसन्न हैं वहीं पहले से चल रहे विद्यालयों की गिरती हालत से अप्रसन्न भी। नये स्कूल खुलने से नये अध्यापकों की भर्ती भी होनी चाहिए लेकिन ऐसा कुछ नहीं है। और पिछले साल जो नई भर्तियां हुई भी हैं वो डी.पी.ई.पी. या बी.ई.पी. के दूसरे चरण को समाप्त कर रहे जिलों में भेज दिए गये होगें या फिर सड़क के आस–पास वाले क्षेत्रों में। अम्बेडकर नगर जैसे अविकसित और सूदूर क्षेत्रों में कोई अध्यापक नहीं आना चाहता। यह संभव भी है कि 6–14 साल के सभी बच्चों का स्कूल के रजिस्टरों में दाखिला हो जाए, लेकिन वर्तमान स्थिति और व्यवस्था को देखते हुए यह लगभग असंभव है कि सभी बच्चे शिक्षित भी हो जायें।

छात्र, शिक्षक एवं शिक्षा

जब एक छात्र से पूछा गया कि अध्यापक स्कूल में क्या पढ़ाते हैं तो जवाब था "पढ़ावत है? मास्टर जी सोवत है और एक सवाल पर चार दस्तखत करत है"। इस वाक्य का क्या अर्थ है, पूछने पर लोगों ने हंसते हुए बताया कि यहां के मास्टर ज्यादातर सोते रहते हैं। जल्दी ग्यारह बजे और देर से बारह, साढ़े बारह बजे तक आते हैं (विद्यालय का समय दस बजे है) और फिर बच्चों को कुछ सवाल या काम देकर खुद सोने लगते हैं। जब बच्चे काम करके उनके पास ले जाते हैं तो वे आंख बन्द किये हुए ही सही का निशान लगाते जाते हैं और चाहे एक ही सवाल चार बार किया हो उस पर दस्तखत करते जाते हैं।

एक अध्यापक जो कि सरकार, समुदाय और प्रधान की जिम्मेदारियों की सूची बनवा रहे थे, उनसे पूछा, गुरू जी आपके

विचार में अध्यापक की क्या भूमिका होनी चाहिए। तो पहले वह सटपटा गये फिर संभल कर बोले "शिक्षकों को कर्तव्यनिष्ठ होना चाहिए और समय का पाबंद"। यह पूछने पर कि अध्यापक कर्तव्यनिष्ठ कैसे होंगे उनका जवाब था "सरकारी डंडा कड़ा होना चाहिए"। अर्थात अधिकारियों का नियमित दौरा होना चाहिए। तभी अध्यापक कर्तव्यनिष्ठ हो पाएगें। इस पर यह सवाल खड़ा हुआ कि सरकारी दौरों से अध्यापक कर्तव्यनिष्ठ कैसे होगें। यदि वे स्वयं अपनी जिम्मेदारी महसूस नहीं करते। वे लगभग बड़बड़ाते हुए बोले "हां हां वह तो ठीक है अध्यापक को खुद ही समझना चाहिए लेकिन कुछ अध्यापक नहीं समझते हैं क्या कर सकते हैं"?

बातचीत करते हुए कुछ अभिभावक काफी भावुक हो गये और सबका दोष छोड़कर अपनी गरीबी और उसके लिए अपनी किस्मत को कोसने लगे । उनके अनुसार "हम गरीबों को कभी भी बराबर का हक नहीं मिलेगा और हमारे बच्चे हमेशा ऐसे ही कमियों और गरीबी में पल कर मजदूर बनते रहेगें"। यह सब सरकार की ऊँचे लोगों के लिए (उनका मतलब सवर्णों से था) साजिश है। उनके अनुसार अध्यापक भी क्या करे और बेचारे बच्चे भी कैसे पढ़ें – कभी–कभी तो हमारे पास वक्त पर देने के लिए फीस भी नहीं होती है। न ढंग के कपड़े न और कोई सुविधा। बच्चों का क्या दोष अगर वो पढ़ न पायें। लेकिन तभी उनके बीच से एक दुबले पतले प्रौढ़ व्यक्ति अचानक खड़े होकर जोर–जोर से गुस्से में मुझे ही सरकार समझ कर सारी व्यवस्था और तंत्र को फटकारने लगे। इसी तरह जब बच्चों से अध्यापकों के बारे में या फिर वो क्या पढ़ते हैं, पूछा तो वे अपने अभिभावकों को देखकर हंसने लगते थे या कुछ मसखरे से लड़के आपस में चुहल करके ठहाके भी लगा लेते थे। किसी के पास भी इसका उत्तर नहीं था कि मास्टर साहब स्कूल में क्या पढ़ाते हैं। कुछ बच्चों को अपने विषयों के नामों की भी जानकारी नहीं थी।

एक अभिभावक ने बताया कि वे अपने लड़के को पढ़ने के लिए भेजते हैं लेकिन वो खेतों में भाग जाता है इसका मन बिल्कुल पढ़ाई

में नहीं लगता है। इस पर दूसरे अभिभावकों की राय थी कि मास्टर अगर इन लड़कों की खाल उधेड़े तो यह भागना भूल जाएंगे। जब इस बच्चे को पास बुलाकर बात की गई तो वह काफी देर तक चुप बैठा रहा और काफी पूछने पर बताया कि "मेरा मन पढ़ने में नहीं लगता और न ही मास्टर साहब अच्छे लगते हैं। इसलिए जो अच्छा लगता है वो करता हूँ"। यह पूछने पर कि यदि उसकी बहुत पिटाई हो तो क्या वह स्कूल जाने लगेगा। इस पर वह गुस्से में बोला "करके देखलें फिर पता लग जाएगा"।

सभी बच्चों से बात करने पर महसूस हुआ कि शिक्षक द्वारा डांट–डपट तो ठीक है लेकिन मार खाने के लिए बिल्कुल तैयार नहीं। खासकर लड़के इस मामले में भी काफी रोष में लगे, क्योंकि ज्यादातर शिक्षकों के गुस्से का कोप भाजन उन्हें ही बनना पड़ता है लेकिन इसका अर्थ यह बिल्कुल नहीं कि लड़कियां बख्श दी जाती हैं लेकिन दण्ड का स्वरूप थोड़ा सा लचीला होता है लेकिन ऐसे भी उदाहरण कम नहीं जहां छोटी बच्चियों की मांओं ने मास्टर के द्वारा अत्यधिक पिटाई की शिकायत की। दूसरा वातावरण तथा संस्कृति की वजह से लड़कियां मार–पिटाई की बातें बताने में भी हिचक और शर्म महसूस कर रही थीं और ज्यादातर चुप ही रहीं।

कुछ बच्चे जो कि पांचवी पास करके पास के जूनियर हाई स्कूल में जाने लगे थे और उन्हें यहां के अध्यापक का कोई डर नहीं था, आगे आये और छात्रों के प्रति अध्यापकों के उदासीन व्यवहार पर जमकर टिप्पणी की। एक छात्र के लिए तो कहना पड़ गया कि यह भविष्य का नेता है आप लोग इसे पहचान लीजिए। इस छात्र ने गांव के विद्यालय से पांचवी पास की थी और उसका मानना था कि गांव के अध्यापक कुछ भी नहीं पढ़ाते हैं सिर्फ दिन भर टाइम पास किया करते हैं। बहुत होता है तो एक लड़के को पहाड़ा गिनने के लिए खड़ा कर देते हैं और खुद आराम करते हैं।

गांव के स्कूल में ब्लैकबोर्ड अन्दर कक्षाओं की दीवार पर लगे हैं और ज्यादातर बच्चे बाहर ही बैठते हैं। जिसके आभाव में अध्यापक गणित इत्यादि विषय भी मुंह जबानी पढ़ाते हैं और फिर बच्चे एक

दूसरे-की नकल करके कापी भरते रहते हैं। एक बच्चे की कापी देखने पर मिला कि अब्बल तो उसमें मास्टर जी का हस्तक्षेप ही सीमित था और यदि कहीं था भी तो सिर्फ बच्चों को संतुष्ट करने के लिए। कहीं–कहीं पर तो गलत उत्तरों और सवालों पर भी सही का निशान और हस्ताक्षर देखे जा सकते थे। यह पूछने पर कि कौन सा पाठ उन्होंने पढ़ा है या फिर पहले पढ़ा था, बच्चे मुंह देखने लगते थे और फिर सहमते हुए जवाब मिलता था यह तो पता नहीं मास्टर जी कुछ पढ़ा तो रहे थे। कुछ बड़े बच्चे खासकर लड़के होते थे तो झट से कहते "का पाठ–वाठ पढ़ावत हैं जहां से उनौ की मर्जी तहन से पढावें शुरूकर दे हम लोगन का पता कोन पाठ पढ़ावा है कौन सा नहीं"।

सामुदायिक सहभागिता

सामुदायिक सहभागिता के नाम पर शिक्षा समिति का गठन एक अनबूझ पहेली है जिसके बारे में कोई भी निश्चित तौर से कुछ नहीं कह सकता। वह एक ऐसी पहेली भी है जो सिर्फ प्रधान और अध्यापकों को बूझने के लिए दी जाती है। बाकी गांव वालों का इससे कोई लेना देना नहीं है। शुरू में जब शिक्षा समिति बनाने का आदेश जारी हुआ था तो यह जिम्मेदारी अध्यापकों पर डाली गई। फिर पिछले साल उनसे यह पदवी छीनकर प्रधानों को दे दी गई और फिर से प्रधानों से यह जिम्मेदारी उठाकर अध्यापकों पर फेंक दी गई। इन सबके चलते अध्यापकों और प्रधानों को छूट मिल गई एक–दूसरे पर दोषारोपण करने के लिए। जब कभी शिक्षा समिति का सवाल खड़ा हो तो शिक्षक प्रधान को देखने लगते और प्रधान शिक्षक की ओर। फिर पहले आप, पहले आप की सी स्थिति बनाते हुए प्रधान जी कहते बताइये मास्टर साहब। इस पर मास्टर साहब कहते आप बताइये अब तो आपको बनानी है न, हम तो पहले बनाये थे। तब प्रधान जी बोले, हां लेकिन अब तो फिर से वह अधिकार प्रधानों से ले लिया गया है, आप ही बताइये और फिर बातचीत यहीं आकर रूक जाती।

एक आदर्श शिक्षा समिति में ग्राम प्रधान, स्कूल के हैडमास्टर, ग्राम

पंचायत के सदस्य और तीन अभिभावक (एक प्रथम आने वाले विद्यार्थी के, दूसरे द्वितीय आने वाले विद्यार्थी के और तीसरे जिसे भी समिति चुनना चाहे) लेकिन इसकी संरचना समय–समय पर बदलती रहती है जैसे कि जब अध्यापकों को समिति बनानी थी तब इसकी संरचना निम्न थी :

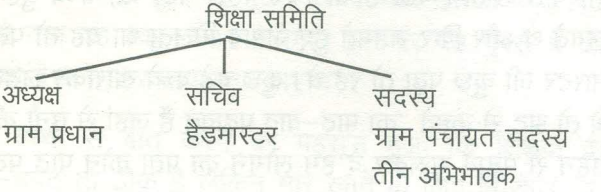

फिर जब इसकी जिम्मेदारी प्रधान पर आ गई तब इसकी संरचना बदलकर निम्न हो गई–

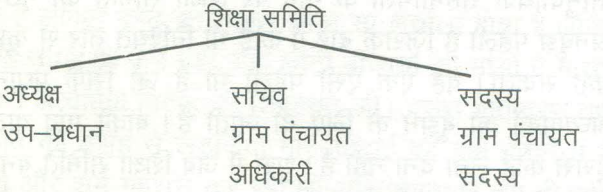

इस संरचना में यह साफ नहीं हो पाया कि अभिभावकों को किस आधार पर शून्य कर दिया गया और उसके बिना शिक्षा समिति सहभागिता कैसे निभाएगी। इस सवाल का जवाब मुश्किल नहीं। जिस तरह वर्तमान में शिक्षा समिति कहीं भी नहीं है और न ही उनकी कोई बैठकें होती हैं लेकिन फिर भी अध्यापक के रजिस्टर में चढ़ कर वह सहभागिता निभाती जा रही है वैसे ही बिना अभिभावकों के भी सहभागिता सुनिश्चित कर ली जाएगी।

पहला गांव जो देखा गया वहां पर शिक्षा समिति की बात आने पर ग्राम सभा के सदस्य थोड़ी देर तक मुंह देखते रहे फिर बोले यह सब हमें पता नहीं ये बातें आप प्रधान से जाकर पूछना। उस गांव में पिछले तीन साल से विद्यालय बना हुआ है और वहां के किसी भी सदस्य को शिक्षा समिति नामक चिड़िया की जानकारी नहीं थी।

उसके बाद यह सवाल प्रधान के पति (असली प्रधान) से पूछा गया तो वे थोड़ा बौखलाए फिर बोले "होती तो है शिक्षा समिति, लेकिन अभी उनके नाम नहीं याद आ रहे, देखें रजिस्टर से देखकर बताते हैं"। यह पूछने पर कि समिति की कभी बैठक तो हुई होगी आपको कुछ तो याद होगा कौन–कौन आया था बैठक में? इस पर वह और भी परेशानी में पड़ गये और झट अपने कमरे से रजिस्टर लाने के लिए भागे लेकिन थोड़ी देर बाद ही अत्यधिक निराशा की दशा में वापस आकर कहा वह रजिस्टर तो हमारे पास नहीं शायद मास्टर साहब के पास होगा। अब शिक्षा को प्रधान के कार्यों से निकाल दिया गया है इसलिए ज्यादा जानकारी नहीं है। वह थोड़े चिन्तित इसलिए भी थे, क्योंकि वे अपनी पत्नी की जगह प्रधानी कर रहे थे और उनके खिलाफ तीन बार अविश्वास प्रस्ताव आ चुका था। इसलिए थोड़ी सी गलती भी बड़ा झंझट खड़ा कर सकती थी, अतः वे काफी चौकन्ने थे।

एक–दूसरे गांव में शिक्षा समिति की बात पूछने पर वहां के प्रधान ने यह तो बता दिया कि उप प्रधान उसके अध्यक्ष हैं लेकिन जब सदस्यों और अभिभावकों के नाम पूछे तो प्रधान और उप–प्रधान में बहस होने लगी। प्रधान जिसका नाम लें उप–प्रधान उसका समर्थन न करें तब प्रधान कुछ और नाम लेकर उप–प्रधान को समझाये तब वे समझ जायें। और यह भी सिर्फ दो या तीन सदस्यों के बारे में ही। अन्य सदस्यों और अभिभावकों के बारे में उन्हें जानकारी नहीं थी, न ही नाम मालूम थे। लेकिन यह पूछने पर कि बैठक होती है – सुखदायी उत्तर मिला "हां साल में दो बार"।

इसी गांव से यह भी पता चला कि शिक्षा समिति का गठन करने के लिए प्रधानों को तीन दिन का ब्लाक स्तर पर प्रशिक्षण भी दिया गया था। यह पूछने पर कि प्रशिक्षण में क्या हुआ था कि वे कुछ बता नहीं सके। सिवाय इसके कि वहां बताया गया था विकास में तीन शब्द हैं वि – विचार, का – कार्य, स – संसाधन और कुछ शिक्षा समिति के बारे में भी बताया था। बाद में उसी प्रशिक्षण के अनुसार न्याय पंचायत के स्तर पर प्रधानों समेत उप–प्रधान और

सदस्यों को भी प्रशिक्षित किया गया लेकिन इस बार समय घटकर आठ घंटे रह गया। किसी को भी प्रशिक्षण विषय वस्तु याद नहीं थी।

एक अन्य गांव में तो प्रधान और अध्यापक के बीच काफी मनमुटाव सा देखने को मिला और शिक्षा समिति की बात आने पर पहले तो वह टालते रहे परन्तु जैसे ही प्रधान किसी काम के लिए उठकर गये अध्यापक फुसफुसाकर बोले उनसे पूछिये अब यह हमारी जिम्मेदारी नहीं। "पहले हमारे रजिस्टर में हुआ करती थी अब उनके रजिस्टर में होगी।"

यह स्थिति तब जबकि शिक्षा समिति का नाम प्रधान और अध्यापक पहचान पा रहे थे। लेकिन वे अविभावक जिनका नाम समिति में था इससे बिल्कुल अनभिज्ञ थे। उनसे पूछने पर वे प्रधान की ओर देखने लगते, फिर एक मिनट के बाद जल्दी से सिर हिलाते, हम हैं उस समिति में। गांव वालों की सहभागिता और शिक्षा समिति में उनका हस्तक्षेप नाममात्र के लिए भी नहीं था। वे नहीं जानते शिक्षा समिति क्या है और इसका क्या कार्य है? सच तो यह है कि शिक्षा समिति के कार्यों के बारे में स्वयं प्रधान और अध्यापक भी स्पष्ट नहीं थे। शिक्षा समितियां सिर्फ खूबसूरती का सिम्बल बन कर शिक्षा में सामुदायिक सहभागिता की औपचारिकता निभाने के लिए रजिस्टरों में बनी हैं (कहीं–कहीं रजिस्टरों में भी नहीं) और उनके काम पर कोई उगंली नहीं उठा सकता, क्योंकि वे कार्य करती ही नहीं।

अधिकारी वर्ग का डी.पी.ई.पी. के प्रति नजरिया

अधिकारी वर्ग विशेषकर बेसिक शिक्षा अधिकारी का डी.पी.ई.पी. के प्रति क्या विचार है और पूरी शिक्षा व्यवस्था को लेकर उनका नजरिया क्या है। इसके लिए उनसे हुए वार्तालाप को ज्यों का त्यों दो खण्डों में रख दिया है निष्कर्ष व्यक्तिगत रूचियों पर छोड़ दिया है।

औपचारिक वार्तालाप

अध्ययन कर्ता

(अ.क.) आपके क्षेत्र में डी.पी.ई.पी. चल रही है?

बेसिक शिक्षा अधिकारी

(बी.एस.ए.) अभी तक तो नहीं थी लेकिन अब आ गई है। इसी साल इस जिले के लिए लखनऊ से अनुमोदित हुई है।

अ.क. तो इसका मतलब बिना परियोजना के ही क्षेत्र में राशन और छात्रवृत्ति इत्यादि मिल रही थी।

बी.एस.ए. हां वह तो समाज कल्याण विभाग से मिलती है उसका डी.ई.पी. से कोई सीधा कनेक्शन नहीं है।

अ.क. क्षेत्र में एस.डी.आई. (सब डिप्टी इन्सपेक्टरों की क्या–2 जिम्मेदारियां है।

बी.एस.ए. प्राथमिक विद्यालयों की मॉनिटिरिंग करना और अध्यापकों के बिल बनाना।

अ.क. कुछ विद्यालयों में पता चला कि शिक्षा समिति के सदस्यों को अध्यापक का वेतन बिल बनाने की जिम्मेदारी सौंपी गई थी।

बी.एस.ए. अरे नहीं। वह सब तो थोड़े दिन के लिए आया था और लागू भी नहीं हो पाया कि वापस चला गया। वो सिर्फ तीन–चार महीने का कन्फ्यूजन था, अब वैसा नहीं।

अ.क. तो एक एस.डी.आई. के लिए कुछ निश्चित है कि वह इतने दिन में एक स्कूल को जरूर देखे अथवा इतने दिन में एक स्कूल को जरूर देखें अथवा इतने दिन भ्रमण अवश्य करें।

बी.एस.ए. नहीं ऐसा कोई बन्धन उस पर नहीं है वह जैसा ठीक समझता है वैसा करता है।

अ.क. तो यदि एक एस.डी.आई. तीन–चार सालों से एक तो क्या कई गांवों में नहीं गया है और प्रधान उसका नाम तक नहीं जानते ऐसी परिस्थिति में क्या होना चाहिए।

बी.एस.ए. उसका बॉस जिला स्तर पर डी.आई. (डिप्टी इन्सपेक्टर) होता है उसे उसके खिलाफ कार्यवाही करनी चाहिए।

अ.क. लेकिन डी.आई. को यह कैसे पता लगेगा क्योंकि वे खुद भी निरीक्षण के लिए नहीं जाते?

बी.एस.ए. उन्हें पता लग जाएगा, क्योंकि सभी जगह ऊपर से साल में दो बार सघन निरीक्षण के आदेश आते हैं तब तो डी.आई और बी.एस.ए. को जाना ही पड़ता है। आप आ गईं वर्ना मैं बस निकलने ही वाला था। हमारा सघन निरीक्षण का काम चल रहा है। (जबकि अम्बेडकर नगर में साफ तौर पर यह स्पष्ट हो गया था कि स्कूलों में बी.एस.ए. तो क्या कई सालों से एस.डी.आई. ने भी करम नहीं फरमाया था।)

अ.क. सघन निरीक्षण के दौरान क्या होता है।

बी.एस.ए. स्कूलों का निरीक्षण किया जाता है और विभिन्न रजिस्टरों को भी चैक किया जाता है।

अ.क. तो आपके क्षेत्र में डी.पी.ई.पी. लागू करने के लिए क्या ग्राउण्ड वर्क हुआ है?

बी.एस.ए. यहां पर कई सेमिनार आयोजित किए गये जिनमें हम शामिल हुए और परियोजना के बारे में सारी जानकारी दी गई। सेमिनार में अध्यापकों और जनप्रतिनिधियों ने भी हिस्सा लिया। दिल्ली और लखनऊ से विशेषज्ञ भी आये थे और उन्होंने कार्यक्रम के बारे में विस्तार से बताया।

अ.क. इससे पहले जहां डी.पी.ई.पी. लागू किया गया है क्या आपने उन क्षेत्रों का कभी दौरा किया है?

बी.एस.ए. नहीं हमने तो कोई क्षेत्र नहीं देखा है। अभी कार्यक्रम का ज्यादा अनुभव नहीं है लेकिन इसकी जरूरत नहीं महसूस की गई क्योंकि जो विशेषज्ञ आये थे उन्होंने तो सब देखा है और उन्हीं के अनुभवों पर आधारित कार्यक्रम में जोड़–घटाव भी किए गये हैं।

अ.क. डी.पी.ई.पी. के तहत कितनी राशि मंजूर हुई है।

बी.एस.ए. 19 करोड़ 60 लाख। जिसमें से 6 प्रतिशत प्रचार–प्रसार के लिए, 24 प्रतिशत इमारत इत्यादि के लिए और 70 प्रतिशत इसके तहत तीन मुख्य उद्देश्यों के लिए काम करना है।

1. 6–14 वर्ष के बच्चों का विद्यालयों में शत प्रतिशत नामांकन।
2. ड्रापआउट रेट को कम करना।
3. शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाना।

अ.क. तो ये आखिरी तीन उद्देश्यों के लिए आप क्या करेंगे।

बी.एस.ए. सुदूर में बसे गांवों में स्कूल खुलवाएगें और अगर जरूरत पड़ेगी तो अनौपचारिक शिक्षा केन्द्र भी चलाए जाएगें। डी.सी.सी. सेन्टर भी खोलेगें।

अ.क. तो गुणवत्ता बढ़ाने के लिए क्या करेगें।

बी.एस.ए. अध्यापकों को प्रशिक्षण दिया जाएगा और एकल विद्यालयों के लिए शिक्षकों को एक साथ 4 कक्षाएं संभालने का प्रशिक्षण भी दिया जाएगा। इसी के तहत रूचिपूर्ण शिक्षा की ट्रेनिंग भी दी जाएगी। स्कूल की आवश्यकताएं जैसे – शौचालय, हैण्डपम्प इत्यादि की व्यवस्था करनी होगी।

अ.क. बहुत से विद्यालय बाउण्ड्री वाल न होने की शिकायत करते हैं इस परियोजना के तहत बाउण्ड्री वाल बन सकेगी।

बी.एस.ए. नहीं इसमें बाउण्ड्री वाल के लिए कोई प्रावधान नहीं

है। लेकिन कहीं–कहीं हमने जे.आर.वाई. और डी. आर.डी.ए. से पैसा लेकर बाउण्ड्री वाल बनवाई हैं।

अ.क. तो आपको लगता है कि बाउण्ड्री वाल की जरूरत है। बी.एस.ए. है तो, होनी भी चाहिए तो फिर आपने उसका प्रावधान क्यों नहीं रखा।

बी.एस.ए. नहीं वो ऐसे नहीं डाल सकते। डी.पी.ई.पी. का एक्शन प्लान बनाने के लिए जो गाइडलाइन्स दी गई थीं उसी के अनुसार बनाना पड़ता है। अपनी इच्छा से कुछ भी नहीं डाल सकते।

अ.क. तो एक्शन प्लान बनाने में आपकी क्या भागीदारी थी?

बी.एस.ए. हमारी पूरी भागीदारी थी। सारी भागीदारी तो हमारी ही थी।

अ.क. तो आपने अध्यापकों की राय का कैसे समावेश किया।

बी.एस.ए. वो तो कई जगह सर्वे हुआ था और सेमिनार भी करवाये उससे उनकी भागीदारी भी हो गई।

अ.क. तो आपके हिसाब से ये जो दो कमरे बनाने का प्रावधान है इसमें सारे बच्चे बैठ सकेंगे। क्या यह उपयुक्त है?

बी.एस.ए. हां मान सकते हैं, क्योंकि एक कमरे में लगभग 100 बच्चे बैठ सकते हैं और फिर बरामदा भी तो एक बड़े हाल के बराबर है उसमें भी लगभग 100 बच्चे बैठ जाएंगे। इस तरह 250–300 बच्चे दो कमरों और एक बरामदे में एडजस्ट किये जा सकते हैं।

अ.क. और इस तरह बैठ कर आपको लगता है कि गुणवत्ता वाली पढ़ाई हो सकेगी।

बी.एस.ए. वो तो देखिये पढ़ाने वाले पर निर्भर करता है कि वह कैसे पढ़ाता है।

अ.क. आप के विचार से आज की शिक्षा में सुधार लाने के लिए क्या करना चाहिए।

बी.एस.ए. शिक्षा ऐसी हो जो किसी उद्देश्य के साथ दी जाए। आज की शिक्षा में यह नहीं है। इसलिए हमारे विचार से शिक्षा रोजगार परक होनी चाहिए अर्थात व्यवसायिक प्रशिक्षण को भी इसमें शामिल किया जाना चाहिए।

अनौपचारिक वार्तालाप

जब यह बातचीत चल रही थी तो कमरे में अध्ययनकर्ता के अलावा बी.एस.ए. के एक साथी उत्तर प्रदेश पुलिस के थानाध्यक्ष, एक ग्राम प्रधान और डिप्टी इन्स्पेक्टर भी बैठे हुए थे। चाय आने के बाद अनौपचारिक बातों का सिलसिला चल निकला, जो कि इस प्रकार है :–

अ.क. बी.एस.ए. साहब वैसे तो अच्छा है आपके क्षेत्र में डी. पी.ई.पी. आ गई है आपको स्वयं अनुभव हो जाएगा लेकिन मैंने अपने अध्ययन के दौरान जो भी देखा है इसमें हमें तो कोई फर्क नजर नहीं आया।

बी.एस.ए. मैं आपकी बात से पूरी तरह सहमत हूँ। मुझे भी मालूम है कुछ नहीं होना। लेकिन सरकारी आदमी है जो भी ऊपर से निर्देश आएंगे वो तो हमें मानने ही हैं। हम तो बाध्य हैं अपने पद और कर्तव्यों से।

अं.क. लेकिन यह तो देखने की आवश्यकता है कि कर्ज लेकर इतना पैसा खर्च हो रहा है इसका आखिर परिणाम क्या है। (डी.आई. साहब जो पहले से ही काफी उखड़े हुए से बैठे थे इस प्रश्न से और उखड़ गये और सिर हिलाकर इन्होंने यह जताया कि वह भी जानते हैं ये फिजूल है लेकिन क्या करें।)

बी.एस.ए. अब क्या बताया जाए। फिलहाल ही देख लीजिए। शिक्षा विभाग के कुल बजट का 98 प्रतिशत सिर्फ वेतन में चला जाता है और बचे 2 प्रतिशत में आप

क्या–क्या कीजिएगा। हम सब जान रहे हैं लेकिन हाथ बंधे हुए हैं।

ग्राम प्रधान समिति की और दूसरा ये भ्रष्टाचार। भारत के प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने कहा था कि गरीबों के लिए दिया हुआ 100 में से मुश्किल से 14 पैसा उनके पास पहुंचता है। यहां भी वही सब है। भ्रष्टाचार है जितना भी काम किया जाए विकास नहीं हो सकता, क्योंकि भ्रष्टाचार कुछ भी ठीक से नहीं होने देगा।

अ.क. लेकिन प्रधान साहब यहां तो सवाल है कि सिर्फ विकास के लिए ही क्यों कर्जा लिया जा रहा है, क्योंकि राष्ट्रीय आय में से ही शिक्षा के बजट का हिस्सा बढ़ा दें और जितनी आवश्यकता हो उतना ही खर्च हो?

बी.एस.ए. लेकिन कर्जा तो सभी चीजों के लिए लिया जा रहा है सिर्फ एक शिक्षा ही नहीं है और फिर जैसी सरकार नीति बनाएगी उसी हिसाब से कार्यक्रम लागू किये जाऐंगे। लेकिन हम कौन होते हैं सरकार को बताने वाले। हम तो सिर्फ निर्देश मानने के लिए हैं दिल्ली का आदेश लखनऊ माने, लखनऊ का हम, हमारा ब्लाक और ब्लाक का गांव; ऐसे ही चलता है सरकारी काम।

अ.क. लेकिन जिस रफ्तार से विदेशी कर्ज़ लिया जा रहा है उससे आने वाली पीढ़ियों और अर्थव्यवस्था को क्या मूल्य चुकाना होगा इसकी किसी को फिक्र नहीं है।

बी.एस.ए. मैडम बिल्कुल ठीक कह रही हैं कर्जा लेते तो महसूस नहीं होता लेकिन जब आने वाली नस्लें चुकाएंगी तब पता लगेगा। लेकिन यह सब तो चक्र है चलता ही रहेगा।

थानाध्यक्ष लेकिन ऐसा भी तो होता है कि विश्व बैंक यह कर्जा

माफ कर दे।

(बी.एस.ए. साहब अध्ययनकर्ता की ओर आशा भरी नज़रों से देखने लगते हैं)

अ.क. देखिये ऐसा मुश्किल नहीं असंभव सा जान पड़ता है। और ऐसा कोई कारण भी तो नहीं वो क्यों कर्जा माफ कर देगें।

बी.एस.ए. जी हां, बिल्कुल कर्ज़ा माफ होना तो मुश्किल है। ऐसा नहीं होता है।

अ.क. सच तो ये है कि परियोजना के नाम पर जो धुआंधार पैसा आ रहा है और जहां पांच की आवश्यकता है वहां 15 खर्च हो रहा है तो निश्चित है कि दस गलत ही खर्च हो रहा है।

बी.एस.ए. हां जैसे ग्राम प्रधान अभी कह रहे थे कि भ्रष्टाचार है और पैसा सही जगह इस्तेमाल नहीं हो रहा है इस तरह तो गलत इस्तेमाल और भी बढ़ जाता है और जहां पहले पाचं खाते थे अब पन्द्रह खाएगें। लेकिन हम तो सरकारी आदमी हैं कोई भी ऐसी टिप्पणी अथवा वक्तव्य नहीं दे सकते। हमारे तो सर्विस टर्म में भी लिखा हुआ है कि कोई भी प्रेस विज्ञप्ति अथवा नोट बिना सरकार की परमिशन के जारी नहीं कर सकते हैं। खैर अब छोड़िये बहुत अनओफिशियल बातें हो गईं और अब हमें ऐसी बातें और नहीं करनी चाहिए। इस कुर्सी पर बैठकर हम कुछ नहीं कह सकते।

(और फिर ऑफिशियल धन्यवाद के बाद इस वार्तालाप का पटाक्षेप हुआ)

सारांश

निष्कर्ष

प्राथमिक शिक्षा को सर्व सुलभ बनाकर 6–14 वर्ष की आयु वाले छात्रों का शत प्रतिशत नामांकन, शिक्षा में गुणात्मक सुधार कर इसे रूचिपूर्ण बनाना तथा सामुदायिक जिम्मेदारी बढ़ाने के लिए ग्राम तथा जिला स्तर की सहभागिता सुनिश्चित करना जैसे सुन्दर उद्देश्यों की कल्पना के साथ बनाई गई "प्राथमिक शिक्षा परियोजनाएं" मात्र कागज़ों पर खूबसूरत आकड़ों तक सिमट कर रह गई हैं। यथार्थ में ऐसा कुछ भी नहीं जिसे शिक्षा की बढी हुई गुणवत्ता अथवा सफलता का सूचक माना जाये। वर्तमान पाठ्यक्रम में जो परिवर्तन किये गये हैं, अध्यापकों के अनुसार वे न सिर्फ अधिक जटिल हैं बल्कि भ्रमित करने वाले भी हैं। भवन निर्माण के नाम पर बनाए जाने वाले दो या तीन कमरों का क्या औचित्य है जबकि कक्षाएं पांच होती हैं। इसमें गांव की जनसंख्या का भी ध्यान नहीं रखा गया है। इसी प्रकार ड्राप आउट रेट को कम करना कार्यक्रम के मुख्य उद्देश्यों में से एक है जबकि पहली और पांचवी कक्षा के छात्रों की सख्यां के बीच का अन्तर इसकी सफलता की पोल खोलता है।

शिक्षा की गुणवत्ता को बढ़ाने के लिए शिक्षण प्रशिक्षण के नाम पर

लम्बे–लम्बे प्रशिक्षण करवाये जा रहे हैं और ऐसे भी प्रशिक्षण दिये जा रहे है जहां पर एक शिक्षक को चार या पांच कक्षाओं को एक साथ नियंत्रित करने की विधि बताई जा रही है, जो कि प्रशिक्षण देने में आसान प्रतीत हो सकती है, परन्तु व्यवहार में लाने की मुश्किलें अनगिनत हैं। इसकी जगह चाहे अप्रशिक्षित अध्यापक ही क्यों न हो यदि वे समुचित सख्या में हों तो शिक्षा कहीं अधिक प्रभावी हो सकती है जिसका जीता जागता उदाहरण है, उन्हीं क्षेत्रों में दिन दूने रात चौगुने के रेट से फलते–फूलते प्राइवेट स्कूल। इन विद्यालयों में बी.एड. इत्यादि की औपचारिकता नहीं है लेकिन समुचित संख्या होने के कारण शिक्षा का स्तर सरकारी प्राथमिक विद्यालयों की तुलना में कहीं अच्छा है जिसकी वजह से अभिभावक मंहगी फीस देकर भी अपने बच्चों को प्राइवेट स्कूलों में भेज रहे हैं।

परन्तु कार्यक्रम सफलतापूर्वक चल रहा है, उसी को मापदंड मानकर परियोजनाएं साल–दर–साल, जिला–दर–जिला बढ़ता चला जा रहा है और फिलहाल इसका तीसरा चरण शुरू हो चुका है। सामुदायिक सहभागिता के नाम पर बनी शिक्षा समितियों और प्रधान की बढ़ी हुई जिम्मेदारी, मात्र दिखावे के अलावा कुछ नहीं। पाठ्य पुस्तकों में भी क्षेत्रीयता अथवा क्षेत्रीय भाषा के लिए संभावनाएं अधिक नहीं हैं जब तक कि शिक्षक स्वयं बहुत ही जागरूक न हों और यह संभव नहीं जान पड़ता, क्योंकि वे जागरूक हों तो भी समय तथा व्यवस्था उन्हें ऐसा करने की अनुमति नहीं दे रही है।

कुल मिलाकर इन परियोजनाओं के दावों और यथार्थ में उतना ही फर्क है जितना कि अक्सर सरकारी दावों और सच्चाई में होता है। पूरा कार्यक्रम कुछ बने हुए और कुछ बनाए हुए तत्थों का ताना बाना बन कर रह गया है जिससे कि हो सकता है नामांकन संख्या का प्रतिशत बढ़ गया हो लेकिन शिक्षा की गुणवत्ता और गुणात्मक सुधार की कोई प्रक्रिया या संभावना नज़र नहीं आती है। नजरिये का परिवर्तन या पद्धति को रूचिकर बनाने के उद्देश्य मात्र उद्देश्य हैं जिन्हें असलियत का जामा पहनने का अवसर अभी तक नहीं मिला है।

- सभी अधिकारियों ने परियोजना की सबसे बड़ी उपलब्धि भवन निर्माण को बताया। लेकिन शहर छोड़कर ग्रामीण क्षेत्रों में घुसते ही भवनों की खस्ता हालत इस उपलब्धि की भी पोल खोलती, दिखाई देती थी।
- शहरी ग्रामीण दोनों ही क्षेत्रों में सरकारी और प्राथमिक विद्यालयों के आस–पास प्राइवेट स्कूल खूब फल–फूल रहे हैं और उनमें आने वाले छात्रों की संख्यां लगातार बढ़ रही है।
- सरकारी स्कूलों में मिल रही छात्रवृत्ति तथा पौष्टाहार जैसी सुविधाओं के बावजूद अभिभावक महंगी फीस देकर भी अपने बच्चों को प्राइवेट स्कूलों में भेज रहे थे।
- शिक्षकों से लेकर ऊंचे अधिकारियों तक किसी को भी परियोजना के पूरे वित्त और उसके आंकड़ों के बारे में जानकारी नहीं थी।
- कुछ अधिकारियों के अनुसार यदि शत–प्रतिशत टारगेट/लक्ष्य पा लिए गये तो विश्व बैंक का शत–प्रतिशत कर्जा अनुदान में बदल जाएगा।
- शिक्षकों अथवा अधिकारियों को परियोजना, उसके उद्देश्य इत्यादि पर समझ बनाने के लिए कोई प्रशिक्षण इत्यादि नहीं दिया गया था।
- सभी अधिकारियों तथा प्रशिक्षकों के अनुसार परीक्षा में आये अंक प्रतिशत ही शिक्षा की गुणवत्ता के द्योतक हैं।
- सभी देखे गये विद्यालयों में शिक्षण पद्धति में पहले की अपेक्षा कोई बदलाव देखने को नहीं मिला।
- शिक्षकों के अनुसार बिना विषय वस्तु को बदले शिक्षण पद्धति बदल देना, कतई न्याय संगत नही है और इसलिए इसकी सफलता सशंकित है।

- पौष्टाहार पर एक अधिकारी की टिप्पणी –"यह एक लाइलाज कोढ़ की तरह स्कूलों में लग गया है"।
- सभी शिक्षकों में मूल्यांकन और दौरे का आतंक साफ दिखाई पड़ता था।
- विद्यालयों के भवन बन गये हैं लेकिन बच्चों की नियति में अभी भी जमीन पर बिना टाट–पट्टी के बैठना ही है।
- बेसिक शिक्षा अधिकारी के कार्यालय से लेकर डाइट प्रशिक्षण स्थल तक धूल और अव्यवस्था का साम्राज्य था लेकिन लखनऊ से अधिकारी आने की सूचना मिलते ही बड़े पैमाने पर सफाई अभियान शुरू हो गया।
- प्रशिक्षण स्थल पर मिले सभी शिक्षक अपनाई गई शिक्षा रणनीति तथा सरकारी तरीकों से खुले तौर पर असंतुष्ट नजर आये।
- पूर्व माध्यमिक विद्यालय के एक शिक्षक से यह पूछने पर कि आपका वेतन कितना है? उन्होंने जबाव दिया "वह तो पता नहीं लेकिन बैंक से लगभग 52–53 सौ रूपये हर महीने मिलते हैं।"
- देखे गए एक स्कूल में शिक्षा समिति के बारे में पूछने पर पता लगा कि प्रभारी अध्यापक तक को शिक्षा समिति और उसके वर्तमान सदस्यों की जानकारी नहीं थी।
- एक जिला परिषद के चेयरमैन कार्यालय में बैठे थे तो उन्होंने बेसिक शिक्षा अधिकारी को फोन कर दो तबादले और एक नियुक्ति करने के सख्त आदेश जारी करते हुए कहा – "जो लोग मैंने आपके पास भेजे थे वो सब बहुत करीबी हैं और मैं इस बारे में कुछ नहीं सुनना चाहता, आपको यह काम तो करवाना ही है"।

हम क्या कर सकते हैं?

इस रिपोर्ट के जरिये प्राथमिक शिक्षा पर बनी हमारी समझ से यह स्पष्ट है कि शिक्षा व्यवस्था में ना सिर्फ खामियां हैं बल्कि बहुत सी ऐसी कमजोरियां हैं जिनको बिना किसी अतिरिक्त कर्जे के सिर्फ इच्छा शक्ति और सूझ–बूझ से दूर कर सकते हैं। उदाहरण के लिए कर्ज स्वरूप ली जा रही रकम से ऐसे स्कूलों या विद्यालयों का निर्माण हो जिनमें कम से कम पांच कमरे हों, क्योंकि सभी विद्यालय में पांच कक्षायें चलती हैं। लेकिन वर्तमान परियोजना में करोड़ों रूपये खर्च करने के बाद भी सिर्फ दो ही कमरे बनाये जाते हैं जिनमें कि 300 से 400 छात्रों का बैठना लगभग असंभव ही है। इसी तरह शिक्षक प्रशिक्षण पर खर्च होने वाली राशि को शिक्षकों की भर्ती पर खर्च किया जाय तो अधिक तर्कसंगत होगा, क्योंकि चाहे एक ही शिक्षक को पांच कक्षाऐं संभालने के कितने भी प्रशिक्षण दे लीजिए, व्यावहारिकता में यह कारगर नहीं हो सकता। परन्तु सरकार इन मूलभूत समस्यओं की तरफ आंख बंद करके सिर्फ विश्व बैंक के हाथ की कठपुतली बन कर रह गयी है, क्योंकि इसमें सरकार की वचनबद्धता सिर्फ कर्जा लेकर घी पीने तक सीमित हो जाती है, उसके बाद कर्जे की राशि का कहां और किस प्रकार उपयोग होना है इसके प्रति कोई जवाबदेही नजर नहीं आती। यदि सरकार ने इन बातों का ध्यान रखा होता तो करोड़ों रूपये पानी की तरह बहा देने के बाद भी प्राथमिक शिक्षा की वह हालत नहीं होती, जैसी कि वर्तमान में देखने को मिल रही है।

ऐसे में जब कि सरकार अपनी जवाबदेही के प्रति गंभीर नहीं है तब यह आम नागरिक का फर्ज

बन जाता है कि वह उन सभी चीजों पर सवाल उठाये जो उसके जीवन से जुड़ी हुई हैं। प्राथमिक शिक्षा एक ऐसा मुद्दा है जो हमारे वर्तमान और भविष्य, दोनों को ही प्रभावित करता है और यदि इसके प्रति गंभीर रूप से विचार नहीं किया गया तो निश्चित तौर पर हमारी आने वाली पीढ़ियां भी अशिक्षा और अनभिज्ञता के अंधेरे में भटकती रहेंगी। शिक्षा और विशेषकर प्राथमिक शिक्षा बच्चे के भविष्य का वह बुनियादी पत्थर है जिस का स्वरूप बिगड़ जाने से उसकी आगे की पूरी शिक्षा प्रभावित होती है और ऐसे में उन बच्चों के बारे में क्या कहिये, जिनको सिर्फ प्राथमिक शिक्षा तक ही पढ़ने का मौका मिल पाता है और उस पर भी प्राथमिक शिक्षा की यह दुर्दशा हमें वह सब कुछ नहीं दे पाती जिसके वे हकदार हैं।

वर्तमान परिस्थिति से उबरने और प्राथमिक शिक्षा में सकारात्मक बदलाव लाने के लिए हम सभी भारत के प्रबुद्ध जनों से अपेक्षा रखते हैं कि वे इस रिपोर्ट को पढ़ने के बाद स्वयं पहल करते हुए निम्न में से कोई एक तरीके से सरकार को अपनी राय और मत से वाकिफ करवायेंगे। आपके द्वारा किया गया कोई भी सहयोगी कार्य आने वाले भविष्य को उज्ज्वल करने की दिशा में एक सार्थक प्रयास होगा।

प्राथमिक शिक्षा : सामूहिक मांग पत्र

देश के हिन्दी भाषी राज्यों के ग्रामीण क्षेत्रों में कार्य कर रहीं स्वयं सेवी संस्थाओं द्वारा प्राथमिक शिक्षा को लेकर एक साझा समझ बनी और इस पर बाकायदा मुहिम चलाने का फैसला लिया गया। इसके तहत निम्नलिखित मांगों को आम लोगों तक ले जाने और उनकी सहमति बनाने की बात हुई। यहां दी गयी ग्यारहो मांगे उन सभी संस्थाओं का सामूहिक मांग–पत्र है जिसे यदि आप भी उचित समझें तो अपने स्तर पर सरकार तक इन मांगों के जरिये अपनी आवाज पहुंचाने का प्रयत्न करें–

1. जितनी कक्षा उतने अध्यापक, जितनी कक्षा उतने कमरे।

2. शिक्षा समिति को स्कूल की स्वायत्त प्रबंध समिति का दर्जा दिया जाय– शैक्षणिक, प्रशासनिक व वित्तीय नियंत्रण समिति का हो।

3. विद्यालय परिसर में समुचित व्यवस्था (खेल मैदान, पेयजल, मनोरंजन व खेलकूद का सामान, शिक्षण सामग्री और उसे सुरक्षित रखने की व्यवस्था, अध्यापकों व छात्रों के बैठने की समुचित व्यवस्था, बच्चों व स्कूल सम्पत्ति की सुरक्षा के लिए चहारदिवारी)।

4. शिक्षक की जवाबदेही शिक्षण कार्य तक ही रहे (शिक्षकों को शिक्षणोत्तर कार्यों में खींचे जाने की प्रथा पर रोक लगायी जाए)।

5. बच्चों के चौमुखी विकास के लक्ष्य से ज्ञान, व्यवहार और क्षमता के न्यूनतम स्तर हॉसिल करने वाला पाठ्यक्रम।

6. बच्चों को स्कूल तक लाने के लिए स्कूल के माहौल और शिक्षण प्रक्रिया को आकर्षक बनाया जाए। इस काम के लिये राशन पर निर्भरता कम की जाए।

7. परीक्षा प्रणाली समाप्त कर सतत् सह–मूल्यांकन की प्रक्रिया चलाई जाए।

8. बच्चों की उम्र के अनुकूल समय का निर्धारण।

9. अनुशासन या कक्षा संचालन के लिये बच्चों के साथ मारपीट की परिपाटी बन्द हो।

10. शिक्षक प्रशिक्षण में व्यवहारगत विकास और बच्चों के प्रति संवेदनशीलता, सहिष्णुता आदि को प्रमुखता दी जाए।

11. शिक्षक प्रशिक्षण की प्रक्रिया को व्यवस्थित ढंग से सतत् (रूप से) चलाया जाय और उसके लिये ब्लाक संदर्भ केन्द्रों को मजबूत किया जाए।

शिक्षा समिति

प्राथमिक विद्यालयों को सुचारू रूप से चलाने और जनसहभागिता सुनिश्चित करने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा समिति बनाने का प्रावधान है। आप अपने गांव अथवा क्षेत्र में यह जानकारी हासिल कर सकते हैं कि वहां शिक्षा समितियां बनी हैं या नहीं? साथ ही शिक्षा समिति में सदस्यों के बारे में जानकारी लेकर समिति के जरिये निम्नलिखित तरीके से अपने गांव की शिक्षा समिति में अपनी मांगों को लेकर प्रस्ताव पारित करा सकते हैं।

शिक्षा समिति प्रस्ताव

गांव.. . . . . जिला . . . . . .की शिक्षा समिति की दिनांक . . . . . को सम्पन्न बैठक में प्राथमिक शिक्षा और स्कूल की व्यवस्था के स्तर में सुधार वास्ते निम्नलिखित प्रस्ताव पारित किये गये:

प्रस्ताव संख्या 1 :

"गांव के प्राथमिक विद्यालय परिसर में नीचे लिखी व्यवस्थाओं का इन्तजाम तुरन्त कराया जाय–

अ) बरामदे, स्टोर व कार्यालय के अतिरिक्त छात्रों के बैठने के लिये पांच कमरों का निर्माण,

ब) स्कूल परिसर में चहारदिवारी और दरवाजे का निर्माण

स) पेयजल और शौचालयों की समुचित व्यवस्था"

प्रस्ताव संख्या 2:

"स्कूल में छात्रों और कक्षाओं की संख्या को देखते हुए कम से कम पांच अध्यापकों की व्यवस्था तुरन्त की जाय"

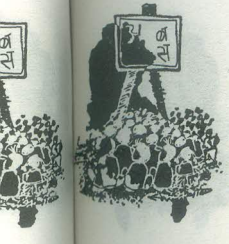

सेवा में,

माननीय मुख्यमंत्री
उत्तर प्रदेश सरकार
लखनऊ, उत्तर प्रदेश

विषयः 'जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम' के संदर्भ में।

महोदय,

उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा चलाये जा रहे प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम अब जनसाधारण की निगाह में आने लगे हैं। इस कार्यक्रम को लेकर सरकार की गम्भीरता का आभास इस बात से भी होता है कि वह 'अपनी चादर से ज्यादा पैर फैला' कर भी इस राज्य की जनता को समुचित और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा उपलब्ध कराने के लिये प्रयासरत् है। उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम के लिये अब तक लगभग एक अरब उन्तीस करोड़ रुपये विश्व बैंक से कर्ज स्वरुप प्राप्त होने की जानकारी इसी मंशा की पुष्टि करती है।

मान्यवर ! प्राथमिक शिक्षा, उसकी अनिवार्यता और उस दिशा में सरकार के प्रयासों को लेकर हमारा कोई मतभेद नहीं है। लेकिन जिस तरह चीज़ें घट रही हैं उन्हे लेकर हमारी कुछ चिन्ताएं जरुर हैं जो हम आपके सामने रखना चाहते हैं। हमारी पहली चिन्ता का कारण वह क्रियान्वयन शैली है जिसमें वित्तीय और प्रशासकीय जवाबदेही का नितांत अभाव है। कितना कर्ज लिये जाने की जरुरत है, कितने पैसों को किन मदों पर ख़र्च होना चाहिये और किस तरह ख़र्च होना चाहिये – यह सब कौन तय कर रहा और किस आधार पर तय कर रहा है, यह हमें समझ नहीं आ रहा है। कार्यक्रम हमारे गांवों को प्राथमिक स्कूल देने की पेशकश करता है लेकिन जो स्कूल बनवाये जा रहे हैं उनमें दो ही कमरे बन रहे हैं और एक या दो ही अध्यापक की बहाली हो रही है। दूसरी ओर हम देखते हैं कि अधिकारियों की गाड़ियों के सरपट दौड़ने, मीटिगों के भत्तों व अन्य ख़र्चो, कार्यशालाओं व सलाहकारों, बहुरंगी प्रचार सामग्रियों तथा पांच सितारा होटलों में की जा रही प्रेस कान्फ्रेन्सों में अनाप–शनाप ख़र्च किया जा रहा है। पूरे अमले के आचरण व व्यवहार को देख कर नहीं लगता कि इस कार्यक्रम में पैसे की कोई कमी है। लेकिन समुचित शिक्षा के लिये 'पांच कक्ष और पांच शिक्षक'; 'रुचिकर शिक्षण पद्धति' और

'उपयुक्त परिसर' जैसी न्यूनतम् आवश्यकताएं भी पूरी नहीं हो रही हैं। पैसों का अभाव होता तो बात दूसरी थी लेकिन पैसा होते हुए भी न्यूनतम् जरुरतों का पूरा न होना आपके लिये भी चिन्ता का विषय होना चाहिये।

मान्यवर ! हमारी दूसरी चिन्ता यह है कि यदि 'जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम' के क्रियान्वन का अमला ऐसे ही चलता रहा तो इस कार्यक्रम के अपेक्षित नतीजे कभी नहीं प्राप्त होंगे। ऐसी स्थिति में भी राज्य सरकार को कर्ज की अदायगी तो करनी ही होगी। कर्ज देने वाला साहूकार भले ही क्रियान्वयन पर अपनी पकड़ बनाये रखे लेकिन उसकी विफलता का सेहरा अपने सर बांधने से रहा और अदायगी में ढील बरतने का तो सवाल ही नहीं पैदा होता। जब विफल हुए कार्यक्रम के कर्ज की वसूली शुरु होगी तब तक आज के हुक्मरां मौजूद नहीं होंगे और उस वक़्त इस अदायगी के लिये उन्ही बच्चों का पेट कटेगा जिनकी पढ़ाई के लिये आज कर्ज लिया जा रहा है और वे अबोध इस ख़तरे से एकदम अंजान हैं।

ऐसे में जिम्मेवार नागरिकों का यह कर्तव्य बन जाता है कि वह 'जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम' की हकीकत और आवश्यकताओं से समय रहते आपको अवगत करायें तथा प्राथमिक शिक्षा को व्यवस्थित और प्रभावी बनाने की दृष्टि से अपने सुझाव आपके सामने रखें। ऐसे में यह आवश्यक है कि आप अपने स्तर से इतने बड़े ऋण पर चलायी जा रही परियोजना राशि के सदुपयोग को सुनिश्चित करवायें और यह जिस मकसद से ली गयी है वास्तव में उसी पर खर्च की जाय।

हमारी राय में, 'जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम' के घोषित लक्ष्यों की दिशा में बढ़ने के लिए न्यूनतम् जरुरतें निम्नलिखित हैं :

1. जितनी कक्षा उतने अध्यापक, जितनी कक्षा उतने कमरे।
2. शिक्षा समिति को स्कूल की स्वायत्त प्रबंध समिति का दर्जा दिया जाय– शैक्षणिक, प्रशासनिक व वित्तीय नियंत्रण समिति का हो।
3. विद्यालय परिसर में समुचित व्यवस्था (खेल मैदान, पेयजल, मनोरंजन व खेलकूद का सामान, शिक्षण सामग्री और उसे सुरक्षित रखने की व्यवस्था, अध्यापकों व छात्रों के बैठने की समुचित व्यवस्था, बच्चों व स्कूल संपत्ति की सुरक्षा के लिए चहारदिवारी)।

4. शिक्षक की जवाबदेही शिक्षण कार्य तक ही रहे (शिक्षकों को शिक्षणोत्तर कार्यों में खींचे जाने की प्रथा पर रोक लगायी जाए)।

5. बच्चों के चौमुखी विकास के लक्ष्य से ज्ञान, व्यवहार और क्षमता के न्यूनतम स्तर हासिल करने वाला पाठ्यक्रम।

6. बच्चों को स्कूल तक लाने के लिए स्कूल के माहौल और शिक्षण प्रक्रिया को आकर्षक बनाया जाए। इस काम के लिये राशन पर निर्भरता कम की जाए।

7. परीक्षा प्रणाली समाप्त कर सतत् सह–मूल्यांकन की प्रक्रिया चलाई जाए।

8. बच्चों की उम्र के अनुकूल समय का निर्धारण।

9. अनुशासन या कक्षा संचालन के लिये बच्चों के साथ मारपीट की परिपाटी बन्द हो।

10. शिक्षक प्रशिक्षण में व्यवहारगत विकास और बच्चों के प्रति संवेदनशीलता, सहिष्णुता आदि को प्रमुखता दी जाए।

11. शिक्षक प्रशिक्षण की प्रक्रिया को व्यवस्थित ढंग से सतत् रूप में चलाया जाय और उसके लिये ब्लाक संदर्भ केन्द्रों को मजबूत किया जाए।

आशा है कि आप हमारी उपरोक्त मांगों को उचित समझते हुए आवश्यक कार्यवाही कर हमें अनुग्रहीत करेंगे।

धन्यवाद सहित,

भवदीय